त्रैमासिक • जनवरी-मार्च 2001 • छह रुपए

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

आह्वान

कैम्पस टाइम्स

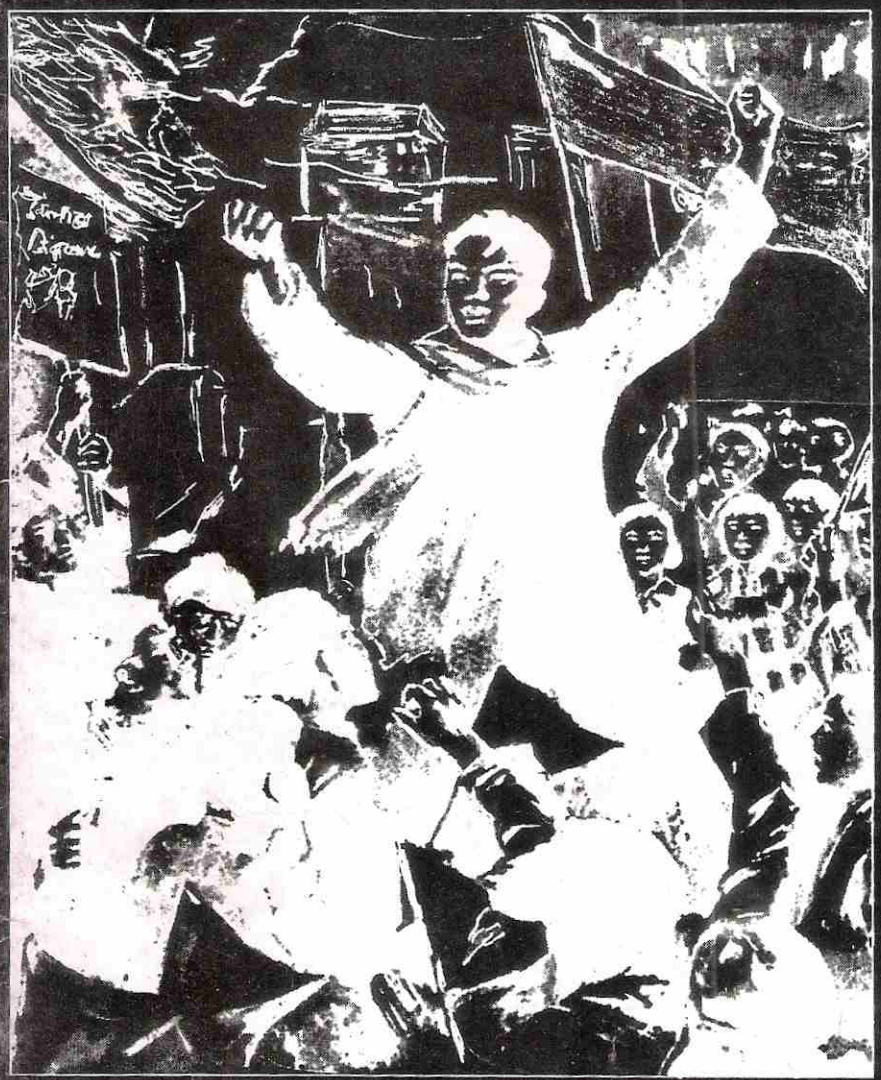

एक सपने को टालते रहने से क्या होता है?

भूमण्डलीकरण की ताल और पूंजी की संगत पर "राष्ट्रीयता" "भारतीयता" और "नैतिकता" का पाठ!

आजादी, स्वाभिमान और गरिमा के लिए फलस्तीनी छात्र-नौजवान फिर सड़कों पर

नई सदी में भगतसिंह की स्मृति

इतिहास के साथ संघी दुराचार • विज्ञान और पोंगापंथ

क्रान्तिकारी छात्रों नौजवानों की शौर्यगाथा : तरुणाई का तराना

कविताएं/कहानी : करोड़पति कैसे होते हैं/बेताल पचीसी

कौन मनुष्य और कौन नहीं...

● मक्सीम तांक

देश में हिन्दू सादायिक फासीवादी ताकतों का उद्धत "राष्ट्रवादी" अभियान लगातार जारी है। संघ परिवार के सभी मुख और मुखौटे अपना खेल चतुराई के साथ खेलते जा रहे हैं। पिछले दिनों इस जमात के एक चतुर खिलाड़ी अटल बिहारी वाजपेयी ने अपना उदारवादी मुखौटा फाड़कर यह उचारा कि बाबरी मस्जिद का विध्वंस राष्ट्रीय भावनाओं का प्रकटीकरण था। इसी जमात के एक अग्निमुखी सरदार शिवसेना के सुप्रीमो बाल ठाकरे ने तो पिछले दिनों अपनी चिरपरिचित धमकाऊ शैली में यहां तक कह डाला कि मुसलमानों को मताधिकार से वंचित कर दिया जाना चाहिए। वैसे उन्होंने कोई नयी बात नहीं कहीं। इस जमात के गुरु गोलवलकर अपनी पुस्तक "वी, अवर नेशनहुड डिफाइन्ड" में काफी पहले ही मुसलमानों को हिन्दुस्तान में दूसरे दर्जे का नागरिक बना देने की मंशा का इजहार कर चुके हैं। बाल ठाकरे ने दूसरे शब्दों में यही बात बस अपने खास अंदाज में दुहरा दी है। दरअसल, बाल ठाकरे जैसे लोग जिस प्रजाति के प्राणी हैं, उस प्रजाति का इतिहास ही मानवता विरोधी जघन्य अपराधों से भरा पड़ा है। तो क्या ऐसे में इस प्रजाति के लोगों को इन्सानों की सूची से ही खारिज कर देने की सिफारिश नहीं कर देनी चाहिए? पश्चिमी बेलारूस के क्रान्तिकारी कवि मक्सीम तांक (जन्म:1912) अपनी इस कविता में यही सिफारिश कर रहे हैं। —संपादक

जनगणना अधिकारियों के लिए जब
तैयार किये जा रहे हों आवश्यक निर्देश
जरूरी है वक्त पर बता देना—
किसे मनुष्य माना जाये और किसे नहीं।
इसलिए कि हम यानी जिन्हें मालूम है
कितना भारी होता है हल
और कितनी भारी राइफल,
कितनी यातनापूर्ण होती है जुदाई
और कैसी होती है विदाई
जिनके लौटने की कोई उम्मीद नहीं!

हमसे कभी स्वीकार नहीं हो सकेगा
मनुष्यों में शामिल किया जाना
उन लोगों का
जिन्हें आज भी अभिशाप दे रही हैं
बेसहारा बहनें और माताएं
अभिशाप दे रही है
भस्मावशेषों से भरी
यह पृथ्वी।

(अनुवाद : वरयाम सिंह)

आह्वान के बारे में कुछ महत्वपूर्ण विचारबिन्दु

➢ 'आह्वान' विपर्यय के इस कठिन अंधेरे दौर में क्रान्ति के नये संस्करण की तैयारी के लिए युवा वर्ग का आह्वान करता है। यह एक नूतन क्रान्तिकारी नवजागरण और प्रबोधन का शंखनाद करता है। यह नई क्रान्ति की नेतृत्वकारी शक्ति के निर्माण के लिए, उसकी मार्गदर्शक वैज्ञानिक जीवनदृष्टि और इतिहासबोध की समझ कायम करने के लिए और भारतीय क्रान्ति के रास्ते की सही समझदारी कायम करने के उद्देश्य से विचार-विनिमय और बहस-मुबाहसे के लिए आम जनता के विवेकशील बहादुर युवा सपूतों को आमंत्रित करता है। 'आह्वान' क्रान्ति की आत्मा को जागृत करने की जरूरत का अहसास है। यह एक नई क्रान्तिकारी स्पिरिट पैदा करने की तड़प की अभिव्यक्ति है। लोग यदि लोहे की दीवारों में कैद नशे की गहरी नींद सो रहे हैं, तब भी हमें लगातार आवाज लगानी ही होगी। नींद में घुट रहे लोगों के कानों तक लगातार पहुंचती हमारी आवाज कभी न कभी उन्हें जगायेगी ही। भूलना नहीं होगा कि एक चिंगारी सारे जंगल को आग लगा सकती है। 'आह्वान' ऐसी ही एक चिंगारी बनने को संकल्पबद्ध है।

➢ 'आह्वान' जिन्दगी के इस दमघोंटू माहौल को बदलने के लिए तमाम जिन्दा लोगों का आह्वान करता है। यह उन सभी का आह्वान करता है जो सही मायने में नौजवान हैं। जिनमें व्यक्तिगत स्वार्थ, कायरता, दुनियादारी, धन लिप्सा, कैरियरवाद और पद-ओहदे-हैसियत- मान्यता की गलाकाटू प्रतिस्पर्धा के खिलाफ लड़ने का माद्दा और जिद है, जिनकी रगों में उष्ण रक्त प्रवाहित हो रहा है। जो न्याय, सौन्दर्य, प्रगति और शौर्य के पुजारी हैं। 'आह्वान' जनता की सेवा में लग जाने के लिए, मेहनतकश अवाम में घुलमिलकर उसकी मुक्ति का परचम थाम लेने के लिए ऐसे ही नौजवानों का आह्वान करता है। सामाजिक क्रान्तियों की कठिन शुरुआत की चुनौतियों को स्वीकारने के लिए पहले जनता के बहादुर युवा सपूत ही आगे आते हैं। इतिहास के रथ के पहिए नौजवानों के उष्ण रक्त से लथपथ हुआ करते हैं।

इस अंक में

अपनी ओर से

...लेकिन अवाम का इंसाफ अभी बाकी है 5

शिक्षा जगत

भूमण्डलीकरण की ताल और देशी-विदेशी पूंजी की संगत पर "राष्ट्रीयता", "भारतीयता" और "नैतिकता" का पाठ सीखो! 7

किन मूल्यों की घुट्टी पिलाना चाहते हैं एन.सी.ई.आर.टी. के निदेशक ! 8

शिक्षा को बाजारू माल बनाने के लिए बिड़ला-अम्बानी का नया फार्मूला 10

मथुरा में फीसवृद्धि के खिलाफ छात्राओं का आन्दोलन 11

विशेष लेख

एक सपने को टालते रहने से क्या होता है? 13

दुनिया जहान में

आजादी, स्वाभिमान और मानवीय गरिमा के लिए
बहादुर फलस्तीनी छात्र-नौजवान एक बार फिर सड़कों पर 20

होशियार ! खबरदार !

संस्कृति के दरोगाओं का 'संस्कृति रक्षा' अभियान 25

उत्तर प्रदेश : "रामराज्य" में पुलिस हत्यारी और थाने वधस्थल बन चुके हैं 26

उन्हें डर है कि वे इतिहास की विषयवस्तु न बन जायें 27

विज्ञान और समाज

लीनस पॉलिंग : जनता को समर्पित एक महान वैज्ञानिक 28

विज्ञान बनाम पोंगापंथ 31

पुस्तक परिचय

'तरुणाई का तराना' : क्रान्तिकारी छात्रों-नौजवानों की शौर्यगाथा 32

साहित्य

कहानी / करोड़पति कैसे होते हैं : *मक्सिम गोर्की* 37

कविताएं / नई सदी में भगतसिंह की स्मृति : *शशि प्रकाश* 18

मैं पूछता हूं भगतसिंह : *वेदप्रकाश वटुक*, पाश : *ज्वालामुखी* 12

बेताल पचीसी

राजन् ! न्याय करने वालों के बारे में न्याय कौन करेगा ? 40

विविधा

अगर आपकी जींस बोल सकती... 41

आह्वान

कैम्पस टाइम्स

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष 9 अंक 3 जनवरी-मार्च 2001

सम्पादक
मुकुल श्रीवास्तव

सज्जा
रामबाबू

एक प्रति का मूल्य
छह रुपये
वार्षिक
तीस रुपये
(डाक व्यय सहित)

सम्पादकीय कार्यालय : कल्याणपुर, गोरखपुर-273001 फोन : 338922

स्वत्वाधिकारी आदेश सिंह द्वारा नौजवान कार्यालय, कल्याणपुर, गोरखपुर से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा आफसेट प्रेस, नखास, गोरखपुर से मुद्रित।

भगतसिंह ने कहा

"भारतीय रिपब्लिक के नौजवानो, नहीं सिपाहियो, कतारबद्ध हो जाओ। आराम के साथ न खड़े रहो और न ही निरर्थक कदमताल किये जाओ। लम्बी दरिद्रता को, जो तुम्हें नाकारा कर रही है, सदा के लिए उतार फेंको। तुम्हारा बहुत ही नेक मिशन है। देश के हर कोने और हर दिशा में बिखर जाओ और भावी क्रान्ति के लिए, जिसका आना निश्चय है, लोगों को तैयार करो। फर्ज के बिगुल की आवाज सुनो। वैसे ही खाली जिन्दगी न गवाओ। बढ़ो तुम्हारी जिन्दगी का हर पल इस तरह के तरीके और तरतीब ढूंढने में लगना चाहिए, कि कैसे अपनी पुरातन धरती की आंखों में ज्वाला जागे और यह एक लम्बी अंगड़ाई लेकर जाग उठे। ...तब एक भयानक भूचाल आयेगा, जो बड़े धमाके से गलत चीजों को नष्ट कर देगा और साम्राज्यवाद के महल को कुचलकर धूल में मिला देगा और यह तबाही महान होगी।"

(हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन के घोषणापत्र से)

एक अपील

'आह्वान कैम्पस टाइम्स' सारे देश में चल रहे वैकल्पिक मीडिया के प्रयासों की एक कड़ी है। हम सत्ता प्रतिष्ठानों, फण्डिंग एजेंसियों, पूंजीवादी घरानों एवं चुनावी राजनीतिक दलों से किसी भी रूप में आर्थिक सहयोग लेना घोर अनर्थकारी मानते हैं। जनता का वैकल्पिक मीडिया सिर्फ जन संसाधनों के बूते खड़ा किया जाना चाहिए—हमारी यह दृढ़ मान्यता है।

अतः हम अपने सभी पाठकों- शुभचिन्तकों-सहयोगियों से अपील करते हैं कि वे अपनी ओर से अधिकतम सम्भव आर्थिक सहयोग भेजकर परिवर्तन के इस हथियार को मजबूती प्रदान करें।

अपरिहार्य बाध्यताओं के चलते 'आह्वान' का अक्टूबर-दिसम्बर 2000 अंक हमें स्थगित करना पड़ा। पाठकों को हुई परेशानी के लिए हमें खेद है। हमारी कोशिश होगी कि आगे ऐसा न हो।—सम्पादक

पाठक मंच

भावनाओं को जगाने में सक्षम

'आह्वान' का जुलाई-सितम्बर 2000 अंक पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। पत्रिका के अध्ययन के पश्चात कुछ नयी भावनाओं का जन्म हुआ। यूं तो सभी लेखों में सराहनीय मेहनत की गयी है किन्तु मुझे सबसे ज्यादा प्रभावित बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की कविताओं ने किया। मैं यह आग्रह करना चाहूंगा कि इस प्रकार की कविताओं का पैमाना थोड़ा और बढ़ाया जाये क्योंकि ये कविताएं छात्रों की पस्त होती भावनाओं में नयी विचारधाराओं का समावेश कराती हैं।

अमित शर्मा, रामजस कालेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आग आंखों में जलेगी तो उजाले होंगे

'आह्वान' के अंक बराबर मिल रहे हैं। समकालीन चुनौतियों के सन्दर्भ में यह पत्रिका निश्चय ही युवा पीढ़ी को क्रान्तिकारी दिशा देने का बड़ा कार्य कर रही है।

आपके मिशनरी भाव की संगति के लिए एक शेर :

और दिन कितने अंधेरों के हवाले होंगे
आग आंखों में जलेगी तो उजाले होंगे।

रामकुमार कृषक
संपादक 'अलाव', सादतपुर, दिल्ली

शासक वर्ग आत्मघाती मार्ग पर

पाश के जन्म दिवस (10 सितम्बर) पर जालन्धर में आयोजित यादगारी समारोह में लगी पुस्तक प्रदर्शनी के स्टाल से 'आह्वान' का जुलाई-सितम्बर 2000 अंक खरीदा और पढ़ा।

आवरण पर छपे चित्र का ब्यौरा भी पत्रिका में देना चाहिए। जाफरी साहब की कविता "कौन आजाद हुआ..." से स्पष्ट है कि चोर और रखवाले की मिलीभगत थी।

सम्पादकीय पढ़ा। शासक वर्ग अपनी असीम शक्ति से भी देश में उठने वाले भावी जनज्वार का सामना नहीं कर सकेगा। अभिनव सिन्हा ने लेख में लोकतंत्र के बुनियादी हक पर क्रूर हमले की पोल खोल दी है। सीटें घटाना छात्रों की बुद्धि-विवेक को कुन्द करना व जनान्दोलनों पर लाठी-गोली चलाना शासक वर्ग को आत्मघाती मार्ग पर ले जायेगा। ब्रेष्ट की कविता मार्गदर्शकों का मार्गदर्शन करती है और उनकी अन्य लघु कविताएं भी छात्रों के मनोबल को बढ़ाती हैं। चन्द्रकान्त देवताले की कविता जनमानस को जागृत करती है और अपनी संघर्षशक्ति का क्रान्तिकारी उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

स्वयंसेवी संगठनों पर विशेष लेख भी पढ़ा। शासक वर्ग की पिशाची जुमलेबाजी में फंसने की जरूरत नहीं। बुर्जुआ समाज अपने वजन से खुद ही पिसता चला जायेगा। दान को जब धार्मिक रंगत दे दी जाती है तो यह खतरनाक अभिशाप होकर रह जाता है। दान से मजदूर वर्ग का शोषण और बढ़ता है।

धर्मसिंह गुलाटी
फिरनी रोड, संगरूर (पंजाब)

चन्द अशआर

हम हवाओं से निकलकर सड़कों पर दंगे करें
पड़ रही दंगों की आदत किस तरफ ले जायेगी।

लाज ललनी की लुटे जब कोतवाली के निकट
बोलिए ऐसी हिफाजत किस तरफ ले जायेगी।

रात को दंगे करें और सुबह को आंसू बहाएं।
नेताओं की ये सियासत किस तरफ ले जायेगी।

बांटते हैं रेवड़ी जो सिर्फ अपनों के लिए
अंधों की नजरे इनायत किस तरफ ले जायेगी।

रोशनी के पांव में डालते हैं जो बेड़ियां
ऐसे लोगों की निजामत किस तरफ ले जायेगी।

मनीषा, कक्षा-8, ग्राम-भदाना, सोनीपत

कृपया 'आह्वान' की सहयोगी पत्रिका और संस्थाओं के नये पते दर्ज कर लें :

पाठकों-सहयोगियों से अपील है कि वे संबंधित पत्रिका या संस्था से उसी के पते पर स्वतंत्र पत्र-व्यवहार करें।

दायित्वबोध, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार फेज-एक, दिल्ली-110091
फोन : (011) 2711136 email : dayitvabodh@rediffmail.com

राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
फोन : (0522) 383928 email : rahulfoundation@rediffmail.com

जनचेतना, डी-68, गोमती मोटर्स के सामने, निरालानगर, लखनऊ-226020
फोन : (0522) 788932 email : janchetna@rediffmail.com

... लेकिन अवाम का इंसाफ अभी बाकी है

पिछले दिनों उच्चतम न्यायालय ने राजधानी दिल्ली को प्रदूषण मुक्त करने का अपना अभियान आगे बढ़ाते हुए यह आदेश दिया कि 'मास्टर प्लान' के अनुसार 'नॉन-कनफर्मिंग' क्षेत्र में आने वाली तमाम औद्योगिक इकाइयों को अविलम्ब बन्द कर दिया जाये क्योंकि इनसे दिल्ली की आबो-हवा में जहर फैल रहा है। आदेश आने के बाद अदालत, केन्द्र सरकार और दिल्ली सरकार के बीच खींचतान सिर्फ इस बात पर होती रही है कि आदेश को अमल में लाने के लिए कितना समय दिया जाये, 'नोडल एजेंसी' (आदेश को अमल में लाने की निगरानी रखने वाली एजेंसी) केन्द्रीय शहरी विकास मंत्रालय बने या दिल्ली सरकार। लेकिन, एक सवाल पर सभी चुप थे कि इस आदेश के अमल में आने से लगभग एक लाख छोटे कारखानों में काम करने वाले लगभग 25 लाख मजदूरों की रोजी-रोटी का क्या होगा? दिल्ली से लेकर यू.पी., बिहार और दूसरे राज्यों में रहने वाले लगभग एक करोड़ लोगों की जिन्दगियों का क्या होगा जो इन मजदूरों पर निर्भर हैं?

इन सवालों पर चुप रहना ही आज हुकूमत के लिए सुविधाजनक है। दिल्ली प्रदेश की सियासत करने वाली दो प्रमुख चुनावी पार्टियों—सत्ताधारी कांग्रेस और प्रमुख विपक्षी दल भा.ज.पा. के लिए करोड़ों लोगों की जिन्दगी का सवाल अगर मुद्दा बना भी तो सिर्फ इस बात के लिए कि कैसे यह बला दूसरे पर टाली जाये। बाकी सभी विपक्षी पार्टियां इस मुद्दे पर या तो बिल्कुल चुप रहीं या अखबारी बयानबाजी करके चुप लगा गयीं। यह चुप्पी एक साजिश है करोड़ों लोगों के जीने के हक के खिलाफ, और इस साजिश में पिछले एक दशक से न्यायपालिका सबसे अहम रोल निभा रही है।

देश में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया शुरू होने के साथ ही "न्यायिक सक्रियता" के नाम पर देश की न्यायपालिका जो भूमिका निभाती चली आ रही है, उसके आधार पर अब यह भ्रम तो खत्म ही हो जाना चाहिए कि बहुसंख्यक मेहनतकश जनता की लूट और शोषण पर टिके किसी समाज में न्यायपालिका निष्पक्ष हो सकती है। पिछले एक दशक में उच्चतम न्यायालय और राज्यों के उच्च न्यायालयों ने जो फैसले सुनाये हैं, वे खुल्लमखुल्ला देश के बड़े पूंजीपति घरानों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का हित साधने वाले घोर जनविरोधी फैसले रहे हैं। इन फैसलों में कैपिटेशन फीस को जायज ठहराया जा चुका है, सरकार की नीतियों के विरोध में आयोजित होने वाली हड़तालों-बन्द आदि को गैर कानूनी ठहराया जा चुका है, मेरिट को वरीयता देने वाले फैसले में प्रकारान्तर से समाज के अन्दर 'सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' (यानी सामाजिक डार्विनवाद) के घोर मानवविरोधी सिद्धान्त को जायज ठहराया जा चुका है, आदि। पिछली डाक हड़ताल (जनवरी 2001) के दौरान "न्यायिक सक्रियता" की हड़ताल तोड़क भूमिका नग्न रूप में सामने आ चुकी है। दिलचस्प बात यह है कि ये तमाम जनविरोधी फैसले संविधान द्वारा दिये जनता के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के नाम पर सुनाये गये हैं। इससे, यह बात भी साबित होती है कि हमारे देश के संविधान में उल्लिखित मौलिक अधिकारों की इतनी व्यापक और लचीली परिभाषाएं हैं कि जब चाहे उन्हें शासक वर्ग के हितों के अनुसार व्याख्यायित किया जा सकता है। इस तरह का आचरण चाहे वह न्यायपालिका करे या कार्यपालिका या विधायिका सब कुछ संविधानसम्मत ही होता है। ठीक वैसे ही, जैसे देश की आन्तरिक सुरक्षा के नाम पर 1975 में इन्दिरा गांधी ने जनता के तमाम मौलिक अधिकारों को हड़प लिया था। उनका यह कृत्य भी कतई असंवैधानिक नहीं था।

अपनी ओर से

ठीक उसी तरह दिल्ली को प्रदूषण-मुक्त करने के नाम पर लाखों लोगों को बेघर-बदर किया जा रहा है—बिल्कुल संविधानसम्मत ढंग से। प्रदूषण मुक्ति की इस चिन्तातुरता में इस सवाल पर ध्यान देने की किसी को फुरसत नहीं है कि दिल्ली के प्रदूषण के लिए आखिरकार जिम्मेदार कौन है? खुद केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के आंकड़े बताते हैं कि दिल्ली के वायु प्रदूषण में मोटर गाड़ियों द्वारा उगले जा रहे धुएं का हिस्सा 64 प्रतिशत है। सच्चाई यह भी है कि दिल्ली के जल प्रदूषण में करीब 64 प्रतिशत सीवर से होता है और दिल्ली की 70 प्रतिशत गरीब आबादी को सीवर ही उपलब्ध नहीं है। सरकारी आंकड़ों के ही मुताबिक

उद्योगों से होने वाले कुल जल प्रदूषण का आधा सिर्फ 45 बड़ी और मंझोली औद्योगिक इकाइयों से होता है। वैसे यह मान भी लिया जाये कि "प्रदूषण फैलाने" के लिए मुख्यत: छोटे उद्योग ही जिम्मेदार हैं तो क्या यह सवाल नहीं पूछा जाना चाहिए कि अब तक केन्द्र सरकारें, राज्य सरकारें, पर्यावरण मंत्रालयों, प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों और अनेक गैर सरकारी संस्थानों की नाक के नीचे ये गुनहगार फैक्टरियां कैसे लगती और चलती रहती हैं? इसका जिम्मेदार किसे ठहराया जाये?

लेकिन, हमारी न्यायपालिका अन्धी नहीं है। बात यह है कि वह सिर्फ शासक वर्गों के लिए सुविधाजनक सच्चाइयों को ही देखना पसन्द करती है। वैसे भी हमारी कानूनी प्रक्रिया में मुजरिम वह नहीं होता जो जुर्म करता है बल्कि वह होता है जिस पर जुर्म साबित किया जा सकता है। इसी कानूनी प्रक्रिया का अमल करते हुए प्रदूषण फैलाने का जुर्म साबित कर दिया गया और सजा दे दी गयी।

पिछले एक दशक में उच्चतम न्यायालय और राज्यों के उच्च न्यायालयों ने जो फैसले सुनाये हैं, वे खुल्लमखुल्ला देश के बड़े पूंजीपति घरानों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का हित साधने वाले घोर जनविरोधी फैसले रहे हैं। इन फैसलों में कैपिटेशन फीस को जायज ठहराया जा चुका है, सरकार की नीतियों के विरोध में आयोजित होने वाली हड़तालों-बन्द आदि को गैर कानूनी घोषित किया जा चुका है, मेरिट को वरीयता देने वाले फैसले में प्रकारान्तर से समाज के अन्दर 'सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' (यानी सामाजिक डार्विनवाद) के घोर मानवविरोधी सिद्धान्त को जायज ठहराया जा चुका है...

अपनी सुख-सुविधा और मुनाफे के लिए जमीन-पानी-बिजली का बेहिसाब-बेरोकटोक इस्तेमाल करने वाले पूंजीवादी कुलीनों पर, एक-एक परिवार में कई-कई गाड़ियों से धुआं उड़ाने वाले अमीरजादों पर कोई रोक-टोक नहीं, लेकिन बन्दी की तलवार गिराई जा रही है लघु उद्योगों पर और कलम के एक झटके से 25 लाख से ज्यादा मजदूरों को धक्के मारकर सड़कों पर फेंक देने का इन्तजाम मुकम्मल कर दिया गया है।

हर दिन बीतने के साथ देश की "पवित्र" न्यायपालिका, पूंजी और कार्यपालिका का अपवित्र गंठजोड़ अधिक से अधिक नंगा होता जा रहा है। 1996 में जब प्रदूषण मुक्ति के नाम पर 168 कारखानों के हजारों मजदूरों को पहली बार उजाड़ा गया था तो उन्हें उच्चतम न्यायालय ने 6 साल से लेकर एक साल तक का वेतन मुआवजे और ट्रांसफर बोनस के रूप में देने का निर्देश कारखाना मालिकों को दिया था। यह अलग बात है कि करीब 90 प्रतिशत मजदूरों को आज चार साल बीत जाने के बाद भी मुआवजा नहीं मिल सका। लेकिन इस बार न्यायालय ने मजदूरों की चिन्ता करने का ढोंग भी करने की जरूरत नहीं समझी है। इस बार तो **न्यायालय ने फैसले में यह कहा है कि कुछ लोगों का स्वास्थ्य बचाना लाखों लोगों के रोजगार से ज्यादा जरूरी है। इतना ही नहीं विद्वान न्यायाधीशों ने यहां तक कहा कि "मजदूर तो घुमन्तू प्रवृत्ति के होते हैं, कहीं भी जाकर काम कर लेंगे।" इससे भी आगे, अपनी रोजी-रोटी बचाने के लिए सड़कों पर उतरे मजदूरों के विरोध को न्यायालय ने "गुण्डों" के आन्दोलन की संज्ञा दे डाली।**

देशी-विदेशी पूंजी की खुली लूट के इस दौर में न्यायपालिका ने भी खुल्लमखुल्ला ऐलान कर दिया है कि वह सिर्फ लुटेरों की नजर से सच्चाइयों को देखना पसन्द करती है और उन्हीं की नजर से इंसाफ करती है। लेकिन शायद यह अपवित्र गंठजोड़ इतिहास की इस सच्चाई को भी जानबूझकर देखना नहीं चाहता कि दुनिया की जनता ने भी इंसाफ किये हैं, अपने फैसले सुनाये हैं।.. और हमारे देश की जनता का फैसला भी अभी बाकी है।... हम धीरे-धीरे उसी दिन की ओर बढ़ते जा रहे हैं।

"कानून की पवित्रता तभी तक रखी जा सकती है जब तक वह जनता के दिल यानी भावनाओं को प्रकट करता है। जब यह शोषणकारी समूह के हाथों में एक पुर्जा बन जाता है तब अपनी पवित्रता और महत्व खो बैठता है... ज्यों ही कानून सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करना बन्द कर देता है त्यों ही जुल्म और अन्याय को बढ़ाने का हथियार बन जाता है। ऐसे कानूनों को जारी रखना सामूहिक हितों पर विशेष हितों की लाभपूर्ण जबरदस्ती के सिवाय कुछ नहीं है।"

(भगतसिंह सहित छह क्रान्तिकारियों द्वारा लाहौर साजिश केस की सुनवाई कर रहे विशेष ट्रिब्यूनल के कमिशनर को लिखे पत्र से)

एन.सी.ई.आर.टी. के नये पाठ्यक्रम का प्रारूप

भूमण्डलीकरण की ताल और देशी-विदेशी पूंजी की संगत पर "राष्ट्रीयता", "भारतीयता" और "नैतिकता" का पाठ सीखो!

अभिनव सिन्हा

सत्तारूढ़ होने के बाद से केन्द्र की भाजपा गठबन्धन सरकार ने विभिन्न स्तरों पर शिक्षा के क्षेत्र में जो "सुधारात्मक" काम निपटाएं हैं, उसके पीछे कौन सी चिन्ताएं हैं, इसपर अब किसी को सन्देह नहीं रहा। अब तक चले आ रहे शिक्षा के समूचे ढांचे पर मानव संसाधन विकास मंत्री माननीय मुरली मनोहर जोशी जी का असन्तोष इस हद तक है कि वे सब कुछ उलट-पुलट देने पर आमादा हैं। पाठ्यक्रमों को, प्रशासनिक ढांचे और शुल्क ढांचे को... सबकुछ को "नई जरूरतों" के मुताबिक नया करने के लिए जो 'मास्टर प्लान' उन्होंने बनाया है उसे वह अपने कारकुनों की मदद से कदम-ब-कदम मुस्तैदी के साथ लागू करते चले आ रहे हैं।

इसी दिशा में पिछले दिनों एक नया कदम उठाया गया है। बीते बाल दिवस (14 नवम्बर, 2000) को राष्ट्रीय शैक्षिक एवं अनुसंधान परिषद (एन.सी.ई.आर.टी.) ने 'स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का प्रारूप' नाम से एक नया दस्तावेज जारी किया है। दस्तावेज के लेखकों ने काफी मेहनत कर भाषा और शब्दावली गढ़ी है, जिससे नये पाठ्यक्रम के पीछे छुपे इरादों को छिपाया जा सके। लेकिन इरादे छुपाये नहीं जा सके हैं। एक सरसरी नजर डालने पर ही वह जमीन नजर आ जाती है, जिसपर खड़े होकर पाठ्यक्रमों के पुराने पड़ जाने पर चिन्ताएं जतायी गयी हैं।

भूमण्डलीकरण के दौर में स्कूली शिक्षा के उद्देश्य पर राय जाहिर करते हुए दस्तावेज में एक जगह कहा गया है : **"एक ओर शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो एक भूमण्डलीय व्यवस्था को बढ़ाने में मददगार हो तो दूसरी ओर इसे राष्ट्रीय अस्मिता के लिए जरूरी राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय भावना एवं राष्ट्रीय एकता विकसित करते हुए भी दिखायी देना चाहिए।** दस्तावेज का यह छोटा सा अंश स्कूली शिक्षा के नये पाठ्यक्रम के प्रारूप की सारवस्तु है जो दस्तावेज में मौजूद ब्यौरों और तफसीलों का बुनियादी दिशानिर्देशक है।

किसी भी समाज में शिक्षा को बदलती जरूरतों के अनुसार ढालना चाहिए, भला किसी को इसपर क्या ऐतराज हो सकता है? यह तो सार्वभौम सत्य है। ठीक वैसे ही, जैसे यह कि सूरज पूरब दिशा से निकलता है। लेकिन सार्वभौमिक सत्य का बयान करने के अन्दाज में स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम का नवीनीकरण करने के पीछे छुपे असली इरादों को यदि पकड़ना है तो हमें यह सवाल उठाना ही होगा कि वर्गों में बंटे समाज में शिक्षा प्रमुखत:

समाज के किन वर्गों की जरूरतों को पूरा करती है? क्या समाज की आम आबादी की जरूरतों को? क्या उत्पादन, राजकाज और समाज के समूचे ढांचे पर कब्जा जमाये वर्गों की जरूरतें और आम आबादी की जरूरतें एक हैं? इन सवालों के आइने में यह बिलकुल साफ हो जायेगा कि आज "भूमण्डलीय व्यवस्था को आगे बढ़ाने में मददगार" शिक्षा समाज के किन वर्गों की सेवा में समर्पित होने जा रही है।

पिछले एक दशक से देश में भूमण्डलीय व्यवस्था लगातार आगे बढ़ती जा रही है। इसके नतीजे अब आम अनुभव की बात हो चुके हैं। कम्प्यूटर और सूचना-तकनीक की लहर पर सवार विशिष्ट वर्ग निस्सीम आनन्दानुभूति की नयी-नयी तरकीबें ढूंढ़ता आम जनों की साधारण जरूरतों तक को रौंदता-कुचलता आगे ही आगे बढ़ता जा रहा है। ऐसे में, अगर माननीय मुरली मनोहर जोशी जी इस विशिष्ट वर्ग के चरित्र नायक और संस्कृति-प्रतीक बनकर शिक्षा के ढांचे को भी नया-नया बनाने पर तुले हुए हैं तो फिर इसमें हर्ज ही क्या है?

विशिष्ट जनों के लिए विशिष्ट शिक्षा और साधारण जनों के लिए साधारण शिक्षा—यह दो तरह की शिक्षा तो हमारे देश में पहले से ही चली आ रही है। हां, भूमण्डलीकरण का दौर शुरू होने के पहले तक इतना जरूरत था कि इस दोहरेपन को खत्म करने के लिए कम से कम जुबानी-जमा खर्च किया जाता था। इस नये पाठ्यक्रम की घोषणा के बाद नयी चीज यह हुई है कि इस मामले में 'कथनी-करनी' के दोहरेपन को खत्म कर दिया गया है। अब डंके की चोट पर दो तरह की शिक्षा दी जायेगी। एन.सी.ई.आर.टी. के नये प्रारूप में इसका पक्का इंतजाम किया गया है।

भूमण्डलीय व्यवस्था को आगे बढ़ाने में सूचना-तकनीक के महत्व पर दस्तावेज में बार-बार चर्चा की गयी है। विशेष जोर के साथ। बेहद स्वाभाविक है यह, क्योंकि शासकवर्ग की नयी जरूरतों के साथ इसका मेल है। पूंजीवादी उत्पादन अधिकाधिक श्रम सघन (labour intensive) के बजाय पूंजी सघन (capital intensive) होता जा रहा है। यानी कम से कम श्रमशक्ति लगाकर अधिकाधिक पूंजी कैसे बढ़ायी जाये? इसमें सूचना-तकनीक के नवीनतम आविष्कारों की भूमिका आसानी से समझी जा सकती है। स्कूली छात्रों को सूचना-तकनीक की नवीनतम जानकारियों की शिक्षा देना शासक वर्गों की इस जरूरत के लिहाज से बेहद जरूरी है, इसमें दो राय नहीं। इस जरूरत के महत्व और इसके लिए विशेष शिक्षा देने के महत्व पर सिर्फ गौर किया जाये और शासक वर्ग की

किन मूल्यों की घुट्टी पिलाना चाहते हैं एन.सी.ई.आर.टी. के निदेशक महोदय!

एन.सी.ई.आर.टी. के निदेशक प्रो. जगमोहन सिंह राजपूत इस बात से बेहद दुखी हैं कि उन पर नये स्कूली पाठ्यक्रम के जरिये शिक्षा क्षेत्र में भाजपा एजेण्डा लागू करने का आरोप लगाया जा रहा है। कई राष्ट्रीय समाचार पत्रों के संवाददाताओं से बातचीत के दौरान उन्होंने अपनी सफाई देते हुए कहा कि सिर्फ इस आधार पर मेरे उपर यह आरोप लगाया जा रहा है कि चूंकि मेरी नियुक्ति केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री डा. मुरली मनोहर जोशी ने की है, इसलिए मैं पार्टी लाइन पर काम कर रहा हूं। उन्होंने कहा कि मेरी सेवा के दौरान बार-बार विभिन्न पदों पर मेरी नियुक्तियां कांग्रेस के मंत्रियों ने की हैं। एन.सी.ई.आर.टी. में मेरी पहली नियुक्ति प्रो. नूरुल हसन ने की थी। विश्वनाथ प्रताप सिंह ने मुझे बाल भवन का निदेशक बनाया था। फिर अर्जुन सिंह ने अपने मंत्रित्व काल में शिक्षकों की शिक्षा के लिए बनी राष्ट्रीय परिषद के निदेशक पद पर मेरी नियुक्ति का अनुमोदन किया था। उन्होंने इन हवालों से अपने ऊपर लगाये जा रहे आरोपों को निराधार बताया।

प्रो. राजपूत शिक्षा क्षेत्र के तेजतर्रार नौकरशाह हैं। जाहिर है बुद्धिमान तो होंगे ही। लेकिन, अफसोस कि उनके द्वारा अपने बचाव में दिये गये सबूत आरोपों को खारिज नहीं करते। दी गयी नजीरें सिर्फ इतना ही सिद्ध करती हैं कि उनके व्यक्तित्व का चारित्रिक गुण किसी द्रव के गुण जैसा है। वह पूंजीवादी व्यवस्था में उच्च पदासीन बहुतेरे उन लोगों में से एक हैं जो हर थाली के बैंगन होते हैं। ऐसे लोगों के सफल जीवन का सूत्रवाक्य होता है - "बहे बयार जैसी, पीठ तस कीजै"। अपनी इसी खासियत के कारण प्रो. राजपूत कांग्रेसी ब्राण्ड प्रगतिशीलों से लेकर जोशी जी की बिरादरी तक के बीच समान रूप से अपनी उपयोगिता सिद्ध करने में सफल रहे हैं। प्रो. राजपूत के व्यक्तित्व की यही तरलता आज उन्हें वैसा सोचने, बोलने और करने को प्रेरित कर रही है जैसा सत्ता का मौजूदा समीकरण चाह रहा है।

समाज में मूल्यों के ह्रास पर बेहद चिन्तित प्रो. राजपूत आरोप लगाने वालों पर उलटे सवाल दागते हैं कि स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम में मूल्यों को बढ़ाने वाले को शामिल करने की जरूरत प्रकट करने का विशेषाधिकार क्या सिर्फ केसरिया ब्रिगेड को है। उन्होंने इस सन्दर्भ में फरवरी 1999 में संसद में पेश एक रिपोर्ट का जिक्र किया। रिपोर्ट "कांग्रेसी" एस.बी. चव्हाण ने पेश की थी। मूल्य आधारित शिक्षा पर सुझाव देने के लिए गठित समिति के रूप में भी चव्हाण द्वारा पेश इस रिपोर्ट के एक अंश को उद्धृत करते हुए श्री राजपूत ने इस बार नये पाठ्यक्रम में मूल्यों के समावेश को जायज ठहराया। उद्धृत अंश इस प्रकार है : "समिति सामाजिक साहचर्य और सामाजिक एवं धार्मिक सौहार्द के एक उपकरण के रूप में धर्मों के बारे में शिक्षा देने की जोरदार हिमायत करती है।" इसके साथ ही श्री राजपूत ने घलुए में एक और सफाई जोड़ दी कि छात्रों को "धार्मिक शिक्षा" नहीं दी जायेगी। धार्मिक के साथ-साथ सामाजिक एवं संवैधानिक मूल्यों की शिक्षा भी दी जायेगी।

सनद रहे कि समाज में मूल्यों के ह्रास पर चिन्तित होने के केसरिया ब्रिगेड" के विशेषाधिकार को चुनौती देकर प्रो. राजपूत ने एक साहसिक कार्य किया है। बहुत-बहुत बधाई। अपने जनतांत्रिक अधिकार को केसरिया ब्रिगेड के हमलों से कितनी चपलता से आपने बचा लिया। आपने बड़ी कुशलता से यह भी साबित कर दिया कि समाज में मूल्यों के ह्रास के प्रश्न पर "कांग्रेसी" एस.बी.चव्हाण और केसरिया दुपट्टाधारी जोशी जी के चिन्तन और चिन्ताओं में कितनी समानता है। लेकिन इस पैंतरेबाजी के बावजूद आप अपने को बेदाग नहीं ठहरा सकें है प्रो. राजपूत!

प्रो. राजपूत, आपकी चिन्ता के असली-नकली होने के विवाद में पड़े बिना यह साफ तौर पर कहा जा सकता है कि आपका चिन्तन न तो वैज्ञानिक है और न व्यावहारिक। मौलिकता के प्रति आपका कोई आग्रह नहीं है। आपने यह ईमानदारी भी बहादुरी के साथ दिखायी है। एस.बी. चव्हाण के साथ-साथ आप अमरीकियों से भी प्रेरणा ग्रहण करते हैं। आपके ही अनुसार द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमरीकियों ने भी जब मूल्य-आधारित शिक्षा व्यवस्था की ओर देखना शुरू किया तो फिर हम क्यों पीछे रहें (देखें स्टेटसमैन, 14 दिसम्बर, 2000)। (अमरीकियों से प्रेरणा ग्रहण करने के मामले में आप केसरिया बिग्रेड को चुनौती नहीं दे सकें, इसका अफसोस रहेगा।)

लेकिन शिक्षा में मूल्यों के समावेश पर चिन्तन करते हुए आपने यदि वैज्ञानिक पद्धति का समावेश किया होता तो शायद आप मूल्यों के ह्रास की समस्या की तह तक पहुंच सकते थे। यदि समाज की एक छोटी से विशेषाधिकार प्राप्त आबादी बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी के श्रम को निचोड़कर उन्हें जीवन के अधिकार से वंचित करती रहेगी तो ऐसे में आप मूल्यों का कौन सा पाठ पढ़ायेंगे? क्या मूल्य हवा में पैदा होते हैं या आसमान से आ टपकते हैं? क्या आप उन्हें "फल की चिन्ता किये बना कर्म किये जा" का पाठ पढ़ायेंगे या 'सन्तोषं परमं सुखम' का। क्या नयी पीढ़ी के सामने इलेक्ट्रानिक व प्रिंट मीडिया, फिल्मों व अन्य माध्यमों से बाजार आधारित मूल्यों की चौबीसों घंटे दी जा रही भारी खुराकों का मुकाबला स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रमों में शामिल आपके नये इंजेक्शन कर पायेंगे। क्या जब नयी पीढ़ी की आंखों के सामने आदर्श चरित्र नायक-नायिकाओं के रूप में हर्षद मेहताओं, अमिताभ बच्चनों, हृतिक रोशनों, सचिन तेंदुलकरों, सुष्मिता सेनों, ऐश्वर्य रायों, प्रियंका चोपड़ाओं जैसी विभूतियां मौजूद हों तो पौराणिक कथाओं के नायकों—अवतारी पुरुषों की जीवन लीलाएं उन्हें सच्चरित्र व आदर्शवान बनने को कैसे प्रेरित कर सकेंगी? क्या इस बाजारू चकाचौंध में उनके अन्दर "तामसी" और "राजसी" गुणों के प्रति वितृष्णा का भाव और "सात्विक" गुणों के प्रति एकात्म निष्ठा का भाव पैदा किया जा सकता है? समाज में "पड़ोसी की जलन आपकी शान" वाली हिंसक ईर्ष्यालु भावना भी राज करे और "देख परायी चुपड़ी मत ललचाये जी" का आदर्श भी फले-फूले, यह साथ-साथ कैसे होगा? इस असंगति को कैसे मिटायेंगे आप प्रो. राजपूत?

"रामलला हम आयेंगे, मन्दिर वहीं बनायेंगे", "जिस हिन्दू का खून न खौला, खून नहीं वह पानी है", जैसे आक्रामक नारों के शोर और "मनुवाद" के विरोधियों और समर्थकों के बीच छिड़ी "सामाजिक न्याय की जंग" के बीच "धार्मिक सौहार्द" का भाव कैसे पैदा कर सकेंगे? स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम में मूल्यों का समावेश करने के इरादे रखने वाले महानुभावों को आज के आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक

(शेष पृष्ठ 10 पर)

जरूरतों को पूरे समाज की जरूरतें बना दिया जाये तो फिर इस विशेष शिक्षा पर उंगली उठाना बेवजह की खुरपेंच ही कही जायेगी। लेकिन, बात महज इतनी नहीं हैं।

सूचना तकनीक की यह विशेष शिक्षा किन छात्रों को मिलेगी? दस्तावेज ने सुझाया है कि यह **'गॉड गिफ्टेड'** और **"प्राकृतिक रूप से"** तीक्ष्ण बुद्धि वाले छात्रों को दी जायेगी। इस श्रेणी के छात्रों की पहचान कैसे जायेगी? इसका भी उपाय सुझाया गया है। छात्रों का **'आई क्यू'** (Intelligence Quotient), **'ई क्यू'** (Emotional Quotient) और **'एस क्यू'** (Spiritual Quotient) मापा जायेगा।

छात्रों के मेधा मापन की यह विधि, कहने की जरूरत नहीं, शासक वर्गों की सेवा में अपनी मेधा समर्पित कर चुके शिक्षा-नौकरशाहों की भीषण सर्जनात्मकता से आविष्कृत हुई है। खासकर, बाद की दो विधियां। वैसे, अब तक पहले वाली विधि से ही दुनिया परिचित थी। अब दुनिया यह भी जान चुकी है 'आई क्यू' का आविष्कार किस तरह नस्लभेद समर्थक दिमागों ने श्वेतों को मानसिक रूप से ज्यादा विकसित तथा काले लोगों को तुलनात्मक रूप से अविकसित साबित करने के लिए गढ़ा था। पिछली सदी में हुई कई अन्य जांचों ने 'आई.क्यू' वाली विधि को अवैज्ञानिक साबित कर दिया है। लेकिन मेधा परीक्षण की यह खारिज की जा चुकी विधि यदि 'भूमण्डलीय व्यवस्था को आगे बढ़ाने में मददगार' शिक्षा के लिए उपयोगी न होती तो इसे देश में लागू करने की सिफारिश न की जाती। शिक्षा के बाजारीकरण के मौजूदा दौर और भारत के विशेष सन्दर्भ में 'इंटलिजेंस कोटियंट' का अर्थ होगा 'मनी कोटियंट'। आर्थिक रूप से सबल छात्र ही इस मेधा परीक्षण में बाजी मारेंगे क्योंकि इस परीक्षण में जो प्रश्न पूछे जायेंगे उनका जवाब सूचना-संचार तकनीक की सुविधाओं की छांह में पल रहे नौनिहाल ही दे सकेंगे। यह विभिन्न स्तरों पर आयोजित होने वाली प्रवेश परीक्षाओं के प्रश्नपत्रों के पैटर्न को देखकर आसानी से समझा जा सकता है। साफ है कि समाज के साधन-सम्पन्न वर्गों के लाडले ही "प्राकृतिक रूप से तीक्ष्ण" या "गॉड गिफ्टेड" साबित होंगे, जिन्हें चुनकर सूचना-तकनीक की नवीनतम "विशेष शिक्षा" दी जायेगी। जाहिर है, स्कूली शिक्षा योग्य आयु-वर्ग के बमुश्किल पन्द्रह फीसदी छात्र ही इस विशेष सुविधा के लाभार्थी होंगे।

रही बात बाकी पचासी प्रतिशत आम आबादी के बेटे-बेटियों की, तो प्रारूप के विद्वान लेखकों की 'सर्वसमावेशी' दृष्टि से वे भी ओझल नहीं हैं। इन छात्रों को **"रोजगार आधारित शिक्षा"** दी जायेगी। अगर सभी छात्र सूचना-तकनीक की विशेष शिक्षा हासिल कर विदेश सेवा में ही चले जायेंगे तो फिर देश के भीतर क्लर्क, चपरासी, चौकीदार, बढ़ईगिरी, लुहारगिरी, राजमिस्त्रीगिरी कौन बनेगा? सड़कों-शौचालयों की सफाई कौन करेगा? कारखानों में मशीनें कौन चलायेगा? फोरमैनी, ड्राईवरी कौन करेगा? आखिर ये सब **समाजोपयोगी उत्पादक** कार्य नहीं हैं क्या? रोजगार के इस लम्बे-चौड़े 'स्पेस' में भटकने के लिए प्रारूप लेखकों ने शत-प्रतिशत आरक्षण दे दिया है। यह पहले भी था, लेकिन आधिकारिक ज्यादा था, अब पूर्ण आधिकारिक हो जायेगा। अब सरकार पर तोहमत लगाने का यह नैतिक अधिकार नहीं बचेगा कि वह साधनहीन छात्रों की उपेक्षा कर रही है।

"भूमण्डलीय व्यवस्था को आगे बढ़ाने में मददगार" होने के लिए सिर्फ वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा ही काफी नहीं है। छात्रों को मूल्यों से लदी-फदी शिक्षा भी देनी पड़ेगी. विद्वान पाठ्यक्रम निर्माता इस महत्व को न केवल समझते हैं, बल्कि भलीभांति समझते हैं। इसलिए, उन्होंने **"राष्ट्रीय अस्मिता के लिए जरूरी राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय भावना एवं राष्ट्रीय एकता"** की भावना छात्रों के अन्दर विकसित करने के लिए पुख्ता इंतजाम किया है। अब तक चली आ रही शिक्षा यह काम ठीक से नहीं करवा रही थी, ऐसा मानना है लेखकों का। लेकिन वह अब तक यह क्यों नहीं कर पा रही थी? नैतिक शिक्षा, इतिहास एवं सामाजिक विज्ञान के अन्य विषयों के अब तक चले आ रहे कौन से पाठ आपत्तिजनक या अवरोधक बने हुए हैं, इसकी ओर इशारा तक किये बिना सीधे सुझाव दिये गये हैं। शायद नकारात्मक दृष्टिकोण के बजाय सकारात्मक दृष्टिकोण वाले कहलाने का आग्रह ज्यादा हावी हो गया हो! बहरहाल, आइये कुछ सुझावों पर गौर करें।

मूल्यों के ह्रास के मौजूदा समय में सरकारी शिक्षाविदों ने छात्रों को नैतिकता का पाठ पढ़ाना अपना परम धर्म माना है। उनके ख्याल से धर्म ही सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है, जिससे सबसे अच्छी नैतिकता का पाठ पढ़ाया जा सकता है। अनेक धर्मों वाले देश की विशेष परिस्थितियों में किस धर्म की नैतिक शिक्षाएं ज्यादा मूल्यवान होंगी, इसका सीधे-सीधे मूल्यांकन करने से बचते हुए सिर्फ सपाटबयानी में ही यह चर्चा की गयी है, जिससे कोई सीधे-सीधे यह आरोप चस्पां न करे कि वे संघी एजेण्डा थोप रहे हैं। (देखें बॉक्स : *किन मूल्यों की घुट्टी पिलाना चाहते हैं एन.सी.ई.आर.टी. के निदेशक महोदय*)। लेकिन, तमाम चतुराइयों के बावजूद कई ऐसे सूत्र (सुराग?) छूट गये हैं, जिनके सिरे को पकड़कर असली मंशा और खुले एजेण्डे (छुपा हुआ एजेण्डा कहना संसदीय अखाड़ेबाजों और दिग्भ्रमित बुद्धिजीवियों की उक्ति है!) तक पहुंचना बेहद आसान है।

प्रारूप में एक जगह कहा गया है कि **"हम स्वदेशीय (भारत में पैदा हुई) सभ्यता को प्रोत्साहित करेंगे।"** सच ही है अपराधी कोई न कोई सुराग छोड़ ही जाता है। यदि उपर्युक्त वाक्यांश को हम भारतीय इतिहास, संस्कृति और सभ्यता की संघी समझ की रोशनी में पढ़ें तो मामला एकदम साफ हो जायेगा। "स्वदेशी" कौन है? "स्वदेशी सभ्यता" क्या है? "राष्ट्रीय अस्मिता", "राष्ट्रीय भावना" और "राष्ट्रीय एकता" जैसे पदों का क्या अर्थ है? यह सब अब छुपा हुआ नहीं रहा। संघ परिवार के सभी मुख और मुखौटे सिर्फ हिन्दू धर्मावलम्बियों को ही स्वदेशी मानते हैं। उनके लिए हिन्दू सभ्यता ही स्वदेशीय सभ्यता है और हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा ही राष्ट्र की एकमात्र भारतीय अवधारणा है और धर्म तो राष्ट्र का केन्द्रीय संघटक अवयव है। बाकी सभी धर्मावलम्बी भारत के लिए विदेशी हैं, पराये हैं और उन्होंने भारत की सभ्यता, संस्कृति को भ्रष्ट किया है, भारतभूमि को पददलित किया है। संघ परिवार के शीर्ष सिद्धान्तपुरुष **गोलवलकर** के शब्दों में **"मुसलमान इस देश में रह सकते हैं, लेकिन पूर्णतया हिन्दू राष्ट्र की अधीनता में, किसी भी चीज पर दावा न करते हुए, सुविधाओं से वंचित होकर। विशेष व्यवहार तो दूर, वे एक नागरिक के अधिकारों से भी वंचित होंगे।"** (संदर्भ : वी, अवर नेशनहुड डिफाइन्ड)।

जोशी जी की विशेष अनुकंपा से एन. सी.ई.आर.टी. के निदेशक पद पर सुशोभित प्रो. राजपूत के निर्देशन में तैयार इस पाठ्यक्रम-प्रारूप में दर्ज की गयी उपर्युक्त शब्दावलियों-पदावलियों से क्या यह अर्थ निकालना ज्यादती होगी कि छात्रों को नैतिकता और राष्ट्रप्रेम का संघी पाठ सरकारी-गैरसरकारी सभी स्कूलों में पढ़ाये जाने की तैयारी की जा रही है।

अन्त में, विद्वान प्रारूप लेखकों के दो विलक्षण आविष्कारों—ई. क्यू और एस.क्यू पर कुछ शब्द। दस्तावेज में इसकी कोई स्पष्ट

(शेष पृष्ठ 10 पर)

(पृष्ठ 8 का शेष)

परिवेश की ये विसंगतिया नजर नहीं आयी होंगी, ऐसा नहीं है। बात दरअसल यह है कि नैतिकता और मूल्यों के बारे में चिन्तित ये सज्जन खुद भी समाज की इन्हीं विसंगतियों की उपज हैं। प्रो. राजपूत जैसे लोगों का चिन्तन उस चौहद्दी के बाहर जा ही नहीं सकता जहां से बाहर निकलकर ही इन विसंगतियों को सुलझाया जा सकता है। वह चौहद्दी है लूट एवं शोषण पर टिकी आज के समाज की आर्थिक बुनियाद व इस पर खड़ी हुई समूची राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक इमारत, जिसे ध्वस्त किये बिना शिक्षा के ढांचे में किसी मूलभूत बदलाव की बात करना या तो काइयांपन हो सकता है या निरी मूर्खता। प्रो. राजपूत किस कोटि के हैं यह आकलन करना महत्वहीन है।

हां, प्रो. राजपूत एक दुविधा के शिकार जरूर हैं, जिसे व्यक्त करते समय वे नये पाठ्यक्रम की व्यावहारिकता पर खुद ही सवाल कर बैठते हैं। वह कहते हैं कि नये पाठ्यक्रम के जरिये सिखाये जाने वाले मूल्य प्रभावी होंगे या नहीं यह बच्चे के बाह्य परिवेश पर निर्भर करता है। लेकिन, इस बात से सिखाये जाने वाले मूल्यों से कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है इसलिए किसी स्तर पर इनका पाठ नहीं पढ़ाया जाये, इसे जायज तो नहीं ठहराया जा सकता। इस पर तो सिर्फ यही कहा जा सकता है कि प्रो. राजपूत आप पूरे मनोयोग के साथ फल की चिन्ता किये बिना कर्म करते जाइये, दुविधा में पड़ेंगे तो न माया मिलेगी न राम मिलेंगे, न मुरलीधर। ●

(पृष्ठ 9 का शेष)

व्याख्या या कोई विधि वर्णित नहीं है। लेकिन, "भूमण्डलीय व्यवस्था को आगे बढ़ाने में मददगार" शिक्षा के उद्देश्य की दृष्टि से इसकी संक्षिप्त व्याख्या ऐसे की जा सकती है :

पहला, विशिष्ट वर्ग के उन छात्रों का ई. क्यू और एस.क्यू उच्चस्तरीय होगा जो कम्प्यूटर-इंटरनेट की उच्च तकनीकी शिक्षा पूर्ण एकाग्रचित्त होकर अर्जित करेंगे और हर प्रकार के सामाजिक अन्याय, असमानता और शोषण से मुंह फेरकर पूर्णतया भावनाहीन और संवेदनहीन बनने को तत्पर होंगे। दूसरा, सामान्य वर्ग के उन छात्रों का एस. क्यू और ई. क्यू उच्च स्तरीय होगा जो राजभक्त और स्वामिभक्त होंगे, प्रभु वर्ग की सेवा अपनी नियति या पुराने पापों का फल मानकर करते रहेंगे और देशी-विदेशी लुटेरों की भूमंडलीय व्यवस्था की जड़ खोदने की दिशा में दिमाग को भटकने से रोकेंगे। ●

शिक्षा को उम्दा बाजारू माल बनाने के लिए बिड़ला-अम्बानी कम्पनी का नया फार्मूला

आदेश सिंह

बिड़ला और अम्बानी समूह को आप किस रूप में जानते हैं? विभिन्न किस्म के औद्योगिक उत्पादों के जरिये भारत के घरेलू बाजार को अपने कब्जे में रखने वाली एकाधिकारी पूंजी के स्वामियों के रूप में ही अगर अब तक आप जानते हैं तो आपकी जानकारी बासी पड़ चुकी है। कृपया ताजा जानकारी से अपना सामान्य ज्ञान बढ़ा लें। बिड़ला-अम्बानी की ज्वाइंट स्टॉक कम्पनी ने शिक्षा क्षेत्र की गुणवत्ता के लिए एक नये उत्पाद का फार्मूला पास करने के लिए प्रधानमंत्री के पास भेजा है। इस बात की सम्भावना शून्य के बराबर है कि फार्मूला रिजेक्ट कर दिया जाये।

शायद आपकी जानकारी में यह बात न हो कि शिक्षा विशेषज्ञ के रूप में बिड़ला-अम्बानी कम्पनी को मान्यता स्वयं प्रधानमंत्री ने ही दी थी। प्रधानमंत्री के विशेष निर्देश पर विगत 28 अगस्त 1998 को एक अधिसूचना जारी कर व्यापार एवं उद्योग परिषद का गठन किया गया था। उस समय इसके सदस्य थे—रतन टाटा, कुमारमंगलम बिड़ला, मुकेश अम्बानी, आर.पी. गोयनका, पी.के. मित्तल, सुरेश कृष्ण (टी.वी. एस.ग्रुप), एन.आर.नारायणमूर्ति (इनफोसिस वाले), नुस्ली वाडिया, ए.सी. मुथैया और डॉ. परविन्दर सिंह। परिषद के अध्यक्ष स्वयं अटल बिहारी वाजपेयी थे। 13 नवम्बर 1999 को एक अन्य अधिसूचना के जरिये इसका पुनर्गठन किया गया, जिसके जरिये सदस्यों में कुछ बदलाव कर संजीव गोयनका, राहुल बजाज, एन. श्रीनिवासन, प्रधानमंत्री के मुख्य सचिव बृजेश मिश्रा को शामिल किया गया। इस परिषद के तहत छह ग्रुप बनाये गये जिन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, सेवा क्षेत्र, पूंजी बाजार, निजीकरण, अच्छा शासन आदि पर अपनी रिपोर्ट तैयार करने और सिफारिशें प्रस्तुत करने के लिए कहा गया। इसके लिए उन्हें सम्बन्धित मंत्रालयों और विभागों तथा प्रधानमंत्री कार्यालय से अधिकतम सम्भव सहयोग और सुविधाएं प्रदान करने का आश्वासन भी दिया गया। 11 दिसम्बर 1999 को फिर इन छह ग्रुपों को बढ़ाकर आठ कर दिया गया और उनसे सलाह मांगी गयी। मुकेश अम्बानी और कुमारमंगलम बिड़ला शिक्षा के लिए गठित विशेष समूह के विशेषज्ञ बनाये गये।

इन धनकुबेर विशेषज्ञों ने भूमण्डलीकरण चश्मे और अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष-विश्वबैंक के 'स्टेथोस्कोप' से देश की उच्च शिक्षा की बीमारी का अध्ययन कर इलाज के लिए नुस्खे तैयार किये और "दवा का सैम्पल" जनवरी महीने में प्रधानमंत्री कार्यालय भेज दिया है। सम्भावना है कि प्रधानमंत्री कार्यालय से अनापत्ति प्रमाणपत्र मिलने में कोई अड़चन नहीं आयेगी और दवा को व्यापक स्तर पर उपभोग के लिए बाजार में जल्दी ही उतारा जायेगा।

हालांकि जो सिफारिशें भेजी गयी हैं, वे नयी नहीं हैं क्योंकि देश के उच्च शिक्षा संस्थानों में सीमित पैमाने पर इनका अमल पहले से ही जारी है। कुछ प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार हैं :

- एक निजी विश्वविद्यालय-विधेयक तैयार किया जाये जो विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निजी विश्वविद्यालयों को प्रोत्साहित करे।
- विश्वविद्यालयों को दी जाने वाली सरकारी सहायता धीरे-धीरे खत्म कर दी जाये।
- शिक्षा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के उपाय किये जायें।
- कानून बनाकर विश्वविद्यालयों-कालेजों में राजनीतिक गतिविधियों पर रोक लगा दी जाये।
- प्राइवेट रेटिंग कम्पनियों से विश्वविद्यालयों के काम-काज की रेटिंग करवाई जाये।

ये सभी सिफारिशें भूमण्डलीकरण के मौजूदा दौर में देशी-विदेशी पूंजी की नयी जरूरतों को पूरा करने की दिशा में निर्णायक कदम उठाने के आदेशपत्र जैसे हैं जिन्हें अमली जामा पहनाने के लिए अब सिर्फ सरकारी मुहर की जरूरत बाकी है। शिक्षा क्षेत्र को देशी-विदेशी पूंजी के निवेश के लिए तैयार करने के लिए सबसे जरूरी है कि शिक्षा के बारे में "परम्परागत" सोच को बदला जाये। शिक्षा को अन्य उद्योगों जैसा दर्जा दिया जाये जिसमें सिर्फ लाभ-हानि के गणित पर पूंजीप्रवाह हो। शिक्षा के बारे में सोच बदलने का काम पिछले एक दशक से जारी है। भाड़े के शिक्षाविद, बाजारप्रेमी प्रोफेसर और मीडिया के कलमघिस्सू पश्चिमी देशों के उदाहरण दे-देकर इस काम में अपनी सारी ऊर्जा लगाये हुए हैं। एक मानसिकता तैयार की जा रही है कि शिक्षा राज्य का उत्तरदायित्व और समाज का विषय

न होकर एक बिकाऊ माल है।

इसके बाद अगला कदम है शिक्षा क्षेत्र में निजी पूंजी निवेश की परिस्थितियां तैयार करना। यह काम भी चालू है। संसाधनों के मामले में आत्मनिर्भर बनाने के नाम पर सरकारी सहायताओं की राशि लगातार कम की जा रही है और खुद संसाधन जुटाने के फार्मूले के तहत प्रवेश से लेकर अन्त तक अध्ययन की विभिन्न सुविधाओं के लिए छात्रों से मोटी रकमें वसूल की जा रही हैं। स्थिति ऐसी सीमा तक पहुंचा देने का लक्ष्य है जब शिक्षकों-कर्मचारियों की तनख्वाहों तक के लिए सरकार अपने हाथ उठा दे। यानी, विश्वविद्यालय बीमार घोषित कर दिये जायें। तब उनके उद्धार के लिए देशी-विदेशी पूंजी के लिए मैदान पूरी तरह खाली हो जायेगा। वैसे, विभिन्न राज्यों के विश्वविद्यालय बीमारी की हालत में आ भी चुके हैं। शिक्षकों-कर्मचारियों को कई-कई माह का वेतन नहीं मिल पा रहा है। नयी भर्तियां लगभग बन्द हैं। शिक्षकों की कमी की भरपाई के लिए शिक्षकों को ठेके पर पढ़ाने का काम दिया जा रहा है।

लेकिन, उच्च शिक्षा क्षेत्र में देशी-विदेशी प्रत्यक्ष पूंजी निवेश में सबसे बड़ी बाधा विश्वविद्यालयों की "राजनीति" है। शिक्षक-कर्मचारी राजनीति चाहे जितनी नखदन्तविहीन हो चुकी हो, जब उनके आर्थिक हितों पर चोट पहुंचेगी, नौकरी पर बन आयेगी तो विरोध की आवाज उठनी स्वाभाविक है। महज फीसें बढ़ाने और सीटें घटाने के सवाल पर ही नहीं, इतिहास गवाह है कि व्यापक सामाजिक मुद्दों पर छात्रों-युवाओं के आन्दोलन सत्ता के लिए जबर्दस्त चुनौती बनते रहे हैं। बिड़ला-अम्बानी की बिरादरी इसीलिए शिक्षा क्षेत्र में व्यापक पूंजी निवेश के लिए तब तक तैयार नहीं है जब तक कि परिसरों से राजनीति की हर सम्भावना को खत्म न कर दिया जाये। इसीलिए कानून बनाकर परिसरों की राजनीति पर रोक लगाने की सिफारिश की गयी है। विश्वविद्यालयों की रेटिंग करते समय रेटिंग कम्पनियां आर्थिक ब्यौरे के साथ-साथ इस मानक का खास ख्याल रखेंगी कि उस परिसर से "राजनीति" का कितना सफाया हुआ है।

प्रधानमंत्री कार्यालय अपने चहेते 'विशेषज्ञों' की भावनाओं और जरूरतों का विशेष ख्याल रख रहा है। अगले शैक्षणिक सत्र में प्रधानमंत्री कार्यालय के प्रत्यक्ष निर्देशन में उच्च शिक्षा में "सुधार" की योजना फैसलाकुन मुकाम पर पहुंचाने का 'मास्टर प्लान' तैयार हो रहा है।

क्या शिक्षक-कर्मचारी और छात्र राजनीति इसका मुकाबला करने के लिए तैयार है? ●

मथुरा में फीसवृद्धि के खिलाफ छात्राओं का आन्दोलन

एक स्वतःस्फूर्त विस्फोट जो भविष्य की आहट दे गया

आगरा मंडल के शिक्षाजगत में यह एक किस्म का भूचाल था जो कालेज छात्रों की फीस वृद्धि का मसला लिये उठ खड़ा हुआ था। महीना था नवम्बर-दिसम्बर का। न कोई राजनीतिक-सांगठनिक प्रश्रय, न ही योजनाबद्ध मोर्चेबन्दी, मथुरा की छात्राएं स्वतःस्फूर्त सड़कों पर निकल पड़ीं। लक्ष्य था उत्तर प्रदेश सरकार की लुटेरी शिक्षा नीति की मुखालफत। सरकार ने बीच सत्र में कालेजों के लाखों-लाख छात्रों पर अचानक शोषण का जाल फेंका था। सरकार के उस मनमाने फैसले से सीधे तौर पर अभिभावकों की जेब पर डाका डाला गया था। छात्राओं के दिमाग में यही बात कौंध गयी कि उनके संरक्षकों को लूटने के लिए सरकार का कदम निजी स्कूल प्रबन्धकों से भी ज्यादा घटिया और खतरनाक है। क्योंकि यदि राज्य अपने इस प्रयोग में कामयाब हो गया तो उनके लिए आगे की पढ़ाई-लिखाई मानो चने चबाने जैसी कर दी जायेगी।

उधर सरकार का फरमान जारी हुआ और इधर मथुरा शहर के कन्या महाविद्यालयों की छात्राएं मुट्ठी बांधकर सड़कों पर निकल पड़ी। यह ललकार कालेज प्रबन्धन के लिए कम, जिला प्रशासन की नजर में ज्यादा हैरतअंगेज और चुनौतीपूर्ण थी। आन्दोलन उठने पर दो-चार दिनों तक प्रशासन असमंजस की स्थिति में रहा। इसीलिए प्रशासन और पुलिस प्रशासन के बीच उस रणनीति पर मतैक्य नहीं रहा कि आन्दोलन का आखिर सामना कैसे किया जाये। नतीजा पुलिस और प्रशासनिक अमले अलग-अलग दमन के स्फुट प्रयोग करने लगे। उससे छात्राओं को अपनी लड़ाई आगे ले जाने में थोड़ी आसानी भी हुई। उस दिन तो छात्राओं की संघर्ष-चेतना ने पूरे आगरा मंडल को ही झकझोर दिया जब मथुरा का होलीगेट अभूतपूर्व चक्का जाम और मानवश्रृंखला की गिरफ्त में आ गया। पूरे शहर की यातायात व्यवस्था अस्तव्यस्त हो उठी। लड़ाकू छात्राओं की मानव श्रृंखला और समाज में अभिभावकों, आम नागरिकों की भी साझेदारी जुड़ गई। पुलिस टुकड़ियां अपने अधिकारियों के साथ मौके पर जमी रहीं लेकिन उनकी हिम्मत नहीं थी कि कोई सबल हस्तक्षेप करतीं। पुलिस अधिकारी मूकदर्शक बने रहे, छात्राओं की ललकार राज्य सरकार की बददिमागी पर बरसती रही। आनन-फानन में ही चौराहे पर सार्वजनिक मंच बना कर सभा की गई। विरोध प्रदर्शन अपने मकसद में पूरी हिम्मत से कामयाब रहा। प्रशासन हाथ मल कर रह गया। ऐसा मथुरा के इतिहास में शायद कभी नहीं हुआ था कि इतने बहादुराना अंदाज में महिलाओं ने शासन-प्रशासन के मुंह पर तमाचा मारा हो।

मथुरा प्रशासन व प्रदेश सरकार के लिए यह आंदोलन इन अर्थों में भी अपना अलग सरोकार रखता था कि इस जिले से मंत्रिमंडल में चार मंत्री हैं जिनमें श्याम सुंदर शर्मा, सरदार सिंह, दो कैबिनेट स्तर के हैं। इस स्वतः स्फूर्त आंदोलन की मुखरता इन मंत्रियों की स्थानीय राजनीति में सीधे-सीधे खलल पैदा कर रही थी, सो इन चारों के कान अलग से खड़े हुए। पहले तो लखनऊ में गुपचुप कानाफूसियां चलती रहीं। मथुरा प्रशासन से पलपल के हालात की फोन पर सूचना ली जाती रहीं, लेकिन जब एक दिन छात्राओं ने आन्दोलन का रुख मोड़ते हुए होमगार्ड मंत्री श्यामसुन्दर शर्मा के स्थानीय आवास पर ही धावा बोल दिया, उनकी जिला पंचायत अध्यक्ष पत्नी को घर में कैद कर लिया तो प्रशासन की घिग्घी बंध गयी। हुआ यह कि इससे एक दिन पहले प्रशासन ने थोड़ी हिम्मत जुटा कर छात्राओं के साथ कड़ाई कर दी थी। दो-तीन छात्राओं को पीटा-घसीटा गया था। छात्राएं काफी उत्तेजित थीं। लड़ाई हिंसक हो उठी थी। उसी की प्रतिक्रिया था आंदोलन का नया चरण। छात्राओं ने मंत्री के घर में उनकी पत्नी को लखनऊ फोन मिलाने के लिए विवश कर दिया। फोन पर होमगार्ड मंत्री की छात्राओं से सीधे वार्ता हुई। धूर्ततापूर्वक उन्हें खोखला आश्वासन देकर मंत्री ने अपनी और अपने घर वालों की जान छुड़ाई। अब आंदोलन से मथुरा की कानून व्यवस्था का प्रश्न उठ खड़ा होने लगा था। लखनऊ में बैठे चारों मंत्री अपने गृहक्षेत्र में आने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे थे।

■ कविताएं

भगतसिंह और अवतार सिंह 'पाश' के शहादत दिवस (23 मार्च) के अवसर पर

मैं पूछता हूं भगतसिंह

पश्चाताप का एक फूल
'इंकलाब जिन्दाबाद' के घोष को
अनारकली की तरह चिनकर
राजभवन की दीवारों में
हम रमेंगे फिर
गोरी सत्ता की प्रशस्ति में
किसने सोचा था यह ।
किसने सोचा था कि
पचास वर्ष की आजादी के बाद भी
शोषण जारी रहेगा
बस काले-गोरे का भेद नहीं होगा
पूंजीवादी भेड़ियों में ।
नहीं सोचा था तुमने
या तुम्हारे साथियों ने
कि यह देश
जिसकी खातिर तुम जिये पलपल
क्षण-अनुक्षण
निकलेगा इतना कृतघ्न
कि तुम्हारी याद तक न आयेगी ।
मैं पूछता हूं भगतसिंह
तुम क्यों मरे इसके लिए
और क्यों लिया था तुमने
इस देश में जन्म ?

– वेदप्रकाश 'वटुक'

पाश

मिट्टी की महक
बारिश होने से ही फैलती है
वृक्षों की चहक
पत्तियों के वसंत गान से निकलती है
कवि की उमंग
समय की मांग से गूंजती है
पंजाब के ईमान से पाश पैदा होता है
जो विप्लव गायन बनकर
विमुक्ति गीत गाता है।
मिट्टी की महक
पक्षी की चहक
नदी सी चमक
पाश की दमक है
जिसे पंजाब ने अपनाया है
और सारे काव्य संसार ने गले लगाया है
भगतसिंह को देखते-याद करते
स्वयं कविता बन गये।
अराजकता के माहौल में
कवि बनकर क्रान्ति को प्यारे हो गये
पाश के हत्यारे जीते जी लाश हो गये
और पाश मरकर भी
अक्षरों में जी गये
इतिहास रच गये।

– ज्वालामुखी
(प्रख्यात तेलुगु कवि)

मथुरा की छात्राओं के बहादुराना संघर्ष में कदम से कदम मिलाते हुए फिरोजाबाद, आगरा, एटा, अलीगढ़ और हाथरस के छात्र-छात्राओं ने भी साथ दिया। फीस वृद्धि विरोधी मोर्चेबंदी की, रास्ते जाम किये, गिरफ्तारियां हुईं, ट्रेनों का आवागमन ठप रहा और दूसरी ओर से दमन का सिलसिला जारी रहा। इसी बीच एक अन्य मंत्री को अपने सारे कार्यक्रम स्थगित कर मथुरा के सर्किट हाउस में चोर दरवाजे से भागना पड़ा। प्रेस कान्फ्रेन्स तक करने की हिम्मत नहीं हुई। इससे छात्राओं के अभिभावकों में भी नाराजगी फैली। आंदोलन चल ही रहा था कि मुख्यमंत्री राजनाथ सिंह भी दो बार मथुरा आकर अपनी फजीहत करा गये। वृंदावन और कोसीकलां की जन सभाओं में बीच भीड़ से बैनर व काले झंडे दिखाते हुए छात्राओं ने उन्हें ललकारा। वृंदावन की सभा में मुख्यमंत्री ने आश्वासन दिया कि लखनऊ जाकर वह शीघ्र ही समस्या का समाधान छात्र दरबार में घोषित करेंगे। तभी उन्हें पुनः मथुरा आना पड़ा। कोई निर्णय सरकार नहीं ले सकी थी, नतीजा हुआ कि कोसीकलां की सभा में छात्राओं ने और पुरजोर ढंग से विरोध जताया। पूरे घटनाक्रम से आजिज पुलिस ने सभा खत्म होने पर मुख्यमंत्री के रवाना होते ही सरकारी इशारों पर छात्राओं को घसीट-घसीट कर पीटा और जीपों में ठूंसकर थाने पर ले गई। इस घटना से एक बार फिर पूरे आगरा में गुस्से की लहर फैल गई। विरोध प्रदर्शनों ने जोर पकड़ लिया। मथुरा में सैकड़ों छात्राओं को कोतवाली परिसर में सारी रात खुले आसमान के नीचे रखा गया और उनके अभिभावकों से मिलने-जुलने तक नहीं दिया गया। प्रशासन की शर्त थी कि छात्राएं मुचलके भर कर जमानत ले लें, पर वे उस पर कतई राजी नहीं हुईं। आखिरकार हार कर अगले दिन बगैर शर्त सभी छात्राओं को छोड़ने के लिए प्रशासन मजबूर हुआ।

सरकार छात्राओं की फीस वृद्धि के मसले पर आज तक धूर्ततापूर्ण चुप्पी साधे हुए है राज्य के मुखिया और मथुरा से निर्वाचित तीनों मंत्रियों के विरोधाभासी बयान बताते हैं कि दोनों ही का इरादा एक है, फीसवृद्धि वापस न लेना। उधर आंदोलनरत छात्राओं का मनोबल तोड़ने की चालें भी कालेज प्रबन्धन स्तर पर चली जा रही हैं। छात्राओं का पठन-पाठन अस्तव्यस्त हो चला है और परीक्षाएं सिर पर हैं।

इस समूचे आंदोलन के साथ मुख्य दिक्कत रही दृष्टिकोण और सांगठनिक योजनाबद्धता का अभाव। सरकार के इशारे पर प्रशासन जिस तरह चौकन्ना हो उठा था, उससे जूझने और राज्य की समूची शिक्षा नीति की बखिया उधेड़ने के लिए जैसी इच्छाशक्ति आंदोलन की रगों में होनी चाहिए थी, वह थी तो लेकिन इसे कोई समझदारी से संचालित करने वाला नहीं था, जिससे एक अच्छे खासे आंदोलन को दिशाहीनता और बीच रास्ते की थकान से नहीं बचाया जा सका। बहरहाल, आंदोलन इतना संदेश तो दे ही गया कि सरकार जनता को जितनी आसानी से किनारे लगा कर अपनी खतरनाक नीतियों को थोपना चाहती है, हालात अब उतने आसान रहे नहीं। भीतर ही भीतर ईंट का जवाब पत्थर से देने की चिंगारी खूब सुलगती जा रही है। समय आने पर वह लपटों का आकार ले सकती है जो समस्त तंत्र को झुलसा कर राख कर देगी।

● बीना, वन्दना, रंजना

एक सपने को टालते रहने से क्या होता है?

"यह अंधेरा
कालिख की तरह
स्मृतियों पर छा जाना चाहता है।
यह सपनों की ज़मीन को
बंजर बना देना चाहता है।
यह उम्मीदों के अंखुवों को
कुतर जाना चाहता है।
इसलिए जागते रहना है
स्मृतियों की स्लेट को पोंछते रहना है।"

(शशि प्रकाश)

विस्मृति के विरुद्ध संघर्ष भी सामाजिक क्रान्ति की लड़ाई का एक अहम मोर्चा है। कभी-कभी, क्रान्तियों की पराजय या संकट के दौरों में किसी भी देश का मेहनतकश अवाम अपनी परम्परा को, इतिहास को, अपने नायकों और उनके विचारों को भुलाकर अपने स्वप्नों से लक्ष्यों-आदर्शों से भी विमुख हो जाता है, उन्हें भी भुला देता है और उसे गतिरोध की स्थिति जकड़ लेती है। गतिरोध की इसी स्थिति को तोड़ने के लिए भगतसिंह ने **"क्रान्ति की स्पिरिट ताजा"** करने की बात की थी **"ताकि इंसानियत की रूह में हरकत पैदा हो।"**

भारतीय इतिहास के (और विश्व इतिहास के भी) एक अभूतपूर्व कठिन दौर में इंसानियत की रूह में हरकत पैदा करने के लिए, क्रान्ति की स्पिरिट ताजा करने के लिए भारतीय जन-मुक्ति संघर्ष के महान नायक शहीदे-आजम भगतसिंह के विचारों को आज बार-बार पढ़ने की जरूरत है, इन्हें हर जीवित हृदय तक पहुंचाने की जरूरत है। भगतसिंह और उनके साथियों का अप्रतिम शौर्य और बलिदान नौजवानों को आज भी साम्राज्यवादी-पूंजीवादी अन्याय के विरुद्ध अंतिम सांस तक लड़ने की प्रेरणा देता है। उनके विचार हमें आज भी नई क्रान्ति की दिशा देने में सक्षम हैं। कांग्रेसी नेतृत्व के हाथों में राजनीतिक सत्ता आने के रूप में देश को जो आजादी मिली थी, उसके बाद आधी सदी का समय बीत चुका है। सच्चाई को जानने और फैसला लेने के लिए पचास वर्ष बहुत होते हैं। 1947 का 'दाग-दाग उजाला' आज संगीन अंधेरी रात की शक्ल ले चुका है। जब सिर पर दोपहर का सूरज होना चाहिए था, उस समय यह अंधेरा तो और अधिक आशंकुनकारी है। साम्राज्यवाद और देशी पूंजीवाद के राहु-केतु ने विकास के सूरज को पूरी तरह ग्रस लिया है। पचास साल पहले जो सवाल एक शायर ने पूछा, वो आज पूरे देश की जनता का सवाल है —

'कौन आजाद हुआ
किसके माथे से गुलामी की सियाही छूटी
मेरे सीने में अभी दर्द है महकूमी का
मादरे-हिन्द के चेहरे पे उदासी है वही।'

भगतसिंह को याद करो!
नई क्रान्ति की राह चलो!

सन '47 में मिली आजादी की हकीकत एकदम सामने आ जाने के बाद, देश के हर मेहनतकश को, हर छात्र-युवा को आज यह बताना और अधिक जरूरी लगने लगा है कि शहीदे-आजम भगतसिंह ने राष्ट्रीय आंदोलन के (कांग्रेसी) पूंजीवादी नेतृत्व के बारे में काफी पहले ही आगाह किया था और कहा था कि कांग्रेस की लड़ाई का अंत किसी न किसी समझौते में ही होगा। भगतसिंह और उनके साथियों ने स्पष्टतः और बार-बार अपने बयानों, पर्चों और लेखों में बताया था कि कांग्रेस के नेतृत्व में जो लड़ाई लड़ी जा रही है, उसका लक्ष्य व्यापक जनता की शक्ति का इस्तेमाल करके देशी पूंजीपति वर्ग के लिए सत्ता हासिल करना है, गोरी बुराई की जगह काली बुराई को लाना है, दस फीसदी ऊपर के लोगों की आजादी हासिल करना है। दूसरी ओर उन्होंने साफ-साफ शब्दों में घोषणा की थी कि क्रान्तिकारी आजादी हासिल करने का मतलब 90 फीसदी आम मेहनतकश जनता के लिए आजादी हासिल करना समझते हैं, वे साम्राज्यवाद और सामंतवाद का नाश करने के साथ ही देशी पूंजीवाद का भी खात्मा करना चाहते हैं, उनकी पूरी पूंजी और कारखाने जब्त करके मेहनतकशों के राज्य के हाथों में सौंप देना चाहते हैं, भूमि पर समूची जनता का साझा मालिकाना कायम करना चाहते हैं और एक ऐसा जनतंत्र बहाल करना चाहते हैं जो 90 फीसदी जनता का जनतंत्र हो। स्पष्ट शब्दों में भगतसिंह ने समाजवाद की स्थापना को, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना को अपना लक्ष्य घोषित किया था।

आज जब एक अधूरी, खण्डित आजादी के रूप में साम्राज्यवाद से साठगांठ किये हुए देशी पूंजीवाद के जालिम शासन के जुवे को ढोते-ढोते आधी सदी का समय बीत चुका है, आज जबकि 'इस'

आजादी का वास्तविक रूप उदारीकरण-निजीकरण की आर्थिक नीतियों के दौर में खुलकर सामने आ चुका है, तो 'उस' आजादी को याद करना इस अंधेरे के खिलाफ निर्णायक संघर्ष के लिए बेहद जरूरी है जिसका भगतसिंह ने न सिर्फ सपना देखा था बल्कि उसका एक नक्शा भी सामने रखा था और उसे हासिल करने के रास्ते की भी एक रूपरेखा प्रस्तुत की थी। इसीलिए हम भारतीय नौजवानों का आह्वान करते हैं : **'भगतसिंह को याद करो। नई क्रान्ति की राह चलो।'**

नई क्रान्ति की राह चलने के लिए भगतसिंह के विचारों से, क्रान्तिकारी इतिहास की उस गौरवशाली विरासत से परिचित होना जरूरी है जिसे जन-जन तक पहुंचने से रोकने की हरचंद कोशिश देशी सत्ताधारियों ने हमेशा से की है और यह सच है कि आज देश के अधिकांश युवा नहीं जानते कि **23 वर्ष की छोटी-सी उम्र में फांसी का फंदा चूमने वाला वह जांबाज नौजवान कितना ओजस्वी, प्रखर और दूरदर्शी विचारक था! हमें भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों को भुला देने की साजिश के विरुद्ध संघर्ष करना है। विस्मृति के विरुद्ध हमारा यह संघर्ष ही फिर से हमें सपने देखने की क्षमता देगा, हमारे कल्पनालोक को मुक्त करेगा और हमारे पराजय-बोध को समाप्त करेगा।**

शहीदे आजम भगतसिंह के आदर्श और विचार हमारे लिए आज भी प्रासंगिक हैं, बल्कि पहले हमेशा से अधिक प्रासंगिक हैं। भगतसिंह की स्मृति में नई क्रान्ति की प्रेरणा है और विचारों में उसकी दिशा!

भगतसिंह की वैचारिक विकासयात्रा : वह मशाल जिसे आगे लेकर जाना है!

भगतसिंह और **'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन'** के उनके साथी भारत के क्रान्तिकारी आंदोलन को एक ऐतिहासिक मोड़ देने वाले क्रान्तिकारी थे। यूं तो इनमें **भगवती चरण वोहरा, विजयकुमार सिन्हा, सुखदेव, शिव वर्मा, बटुकेश्वर दत्त** आदि भी गंभीर चिन्तनशील प्रकृति के क्रान्तिकारी थे, पर एक युगप्रवर्तक विचारक के रूप में भगतसिंह का स्थान सबसे आगे था जिन्होंने संगठन और क्रान्तिकारी आंदोलन को एक नई दिशा देने का काम किया।

भगतसिंह और उनके साथियों की राजनीतिक-वैचारिक समझ 1917 की रूसी **सर्वहारा क्रान्ति** के प्रखर रक्तिम आलोक से आलोकित हुई थी। तीसरे दशक के इन युवा क्रान्तिकारियों ने **युगान्तर और अनुशीलन** से लेकर **हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन** तक के मध्यवर्गीय अराजकतावादी क्रान्तिकारी आंदोलन के विकास-क्रम की गहराई से पड़ताल की तथा किसान-मजदूर समुदाय को संगठित करने की महत्ता को क्रमशः ज्यादा से ज्यादा समझना शुरू किया। इस वैचारिक विकास में **गदर पार्टी** के निकट अतीत की भूमिका काफी महत्वपूर्ण थी और साथ ही तीसरे दशक के राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृश्य की भी, जहां एक ओर तो असहयोग आंदोलन की वापसी के बाद कांग्रेसी नेतृत्व विश्रृंखलित हो गया था और दूसरी ओर मजदूर हड़तालों और किसान संघर्षों का अनवरत सिलसिला जारी था। पूरी दुनिया में मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी, विशेषकर उनकी युवा पीढ़ी उस समय सोवियत समाजवादी क्रान्ति की उपलब्धियों और विचारों से प्रभावित हो रही थी। भगतसिंह की पीढ़ी भी इसी परिवेश में जी रही थी।

1925-26 के आसपास भगतसिंह, भगवती चरण वोहरा, सुखदेव आदि लाहौर में सक्रिय युवा क्रान्तिकारियों की पीढ़ी रूसी अराजकतावादी **बाकुनिन** से प्रभावित थे। **कामरेड सोहन सिंह जोश** और **लाला छबीलदास** से लगातार सम्पर्क-संवाद और गहन अध्ययन के परिणामस्वरूप भगतसिंह और उनके साथी 1928 तक समाजवाद को अपना लक्ष्य मानने लगे थे। सोवियत व्यवस्था और सर्वहारा शासन की स्थापना की बातें भी वे करने लगे थे, हालांकि इसकी पूरी प्रक्रिया और स्वरूप से वे परिचित नहीं थे तथा किसानों-मजदूरों को संगठित करने का विरोध न करते हुए भी उनका मुख्य जोर गुप्त तैयारियों व सशस्त्र कार्रवाइयों के लिए नौजवानों के ग्रुप तैयार करने पर ही था। उधर कानपुर में सक्रिय क्रान्तिकारी भी **राधामोहन गोकुलजी, सत्यभक्त** और **हसरत मोहानी** के प्रभाव से मार्क्सवाद के भावनात्मक प्रभाव में आये, हालांकि उसकी कोई सुसंगत समझ अभी उनकी नहीं बन सकी थी।

अप्रैल 1928 में लाहौर में **नौजवान भारत सभा** की एक जन संगठन के रूप में स्थापना क्रान्तिकारी आंदोलन की रणनीति में एक महत्वपूर्ण बदलाव का सूचक था। सितम्बर, 1928 में बिखरे हुए क्रान्तिकारी आंदोलन को देश स्तर पर पुनर्गठित करने के उद्देश्य से **'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन'** (एच.एस.आर.ए) का गठन हुआ। भगतसिंह और उनके साथियों के इस समय तक के वैचारिक विकास को विशेष तौर पर नौजवान भारत सभा, लाहौर के घोषणा-पत्र और एच.एस.आर.ए. के घोषणापत्र में देखा जा सकता है।

एच.एस.आर.ए. ने समाजवाद को सिद्धान्त के रूप में और समाजवादी समाज की स्थापना को अंतिम उद्देश्य के रूप में स्वीकार तो किया, पर उसकी रणनीति और कार्यप्रणाली अभी भी व्यक्तिवादी दुःस्साहसवादी ही थी। किसानों-मजदूरों, मध्यम वर्ग के लोगों के जनसंगठन बनाने पर और जन कार्रवाइयों पर जोर नहीं था।

फिर भी महत्वपूर्ण बात यह थी कि **एच.एस.आर.ए. के क्रान्तिकारी न केवल यह मानते थे कि राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष का लक्ष्य समाजवाद की स्थापना होनी चाहिए, बल्कि वे पूरे साम्राज्यवादी विश्व में एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के शोषण के भी विरोधी थे और अपनी लड़ाई सिर्फ ब्रिटिश उपनिवेशवाद से नहीं बल्कि साम्राज्यवाद की विश्व व्यवस्था से मानते थे। सोवियत संघ को वे आदर्श मानते थ और भारत में भी सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना को अपना लक्ष्य मानते थे। भाषाई-धार्मिक-जातिगत संकीर्णता के विरुद्ध संघर्ष में उनका रुख एकदम समझौताविहीन था। वैचारिक तौर पर वे धर्म, रहस्यवाद और भाग्यवाद की दिमागी गुलामी से छुटकारा पा चुके थे। और सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इस दौर में भी भगतसिंह और उनके साथी इस बात को समझने लगे थे कि कांग्रेस के झण्डे तले गांधी जी ने व्यापक जनता के एक बड़े हिस्से को भले ही जुटा लिया हो, पर कांग्रेस उनके हितों की नुमाइन्दगी नहीं करती, बल्कि देशी धनिक वर्गों के हितों की नुमाइन्दगी करती है और यह कि कांग्रेस की लड़ाई का अंत किसी न किसी समझौते के रूप में ही होगा।**

असेम्बली बम काण्ड के बाद, 1929 के मध्य तक एच.एस.आर.ए. के अधिकांश

प्रमुख नेता जेलों में बंद कर दिये गये थे। जेल में इन क्रान्तिकारियों ने न केवल अपने और पूरे क्रान्तिकारी आंदोलन के अनुभवों पर गहन विचार-विमर्श और सिंहावलोकन किया, बल्कि हमदर्दों की सहायता से बाहर से जुटाकर भीतर पहुंचाये गये मार्क्सवादी और अन्य क्रान्तिकारी साहित्य का गहन अध्ययन किया। **1929-30 के दो वर्षों का समय एच.एस. आर.ए. के क्रान्तिकारियों और भगतसिंह के वैचारिक विकास का सबसे अहम दौर था।** इस दौरान भगतसिंह ने मार्क्सवादी दर्शन का और दुनिया के क्रान्तिकारी साहित्य का कितना गहन अध्ययन किया, **इसका प्रमाण उनकी दुर्लभ जेल नोटबुक के सामने आने के बाद मिल चुका है** (यह नोटबुक अंग्रेजी में जयपुर से प्रकाशित हो चुकी है और हिन्दी में इसका प्रकाशन जल्दी ही परिकल्पना, लखनऊ द्वारा होने वाला है)। उक्त नोटबुक में **रूसो, टॉमस पेन, जैफरसन, पैट्रिक हेनरी, अप्टन सिंक्लेयर, बर्ट्रेण्ड रसल, क्रोपाटकिन, बाकुनिन** आदि के विचारों को नोट करने के साथ ही **मार्क्स-एंगेल्स** की **'पूंजी', 'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र', 'परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्यसत्ता की उत्पत्ति', 'हेगेल के न्याय दर्शन की समालोचना का प्रयास', 'जर्मनी में क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति'** आदि रचनाओं से, लेनिन की **'राज्य और क्रान्ति', 'सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार काउत्स्की'** जैसी रचनाओं से तथा **त्रात्स्की** और **बुखारिन** की कृतियों से भी कई उद्धरण दर्ज किये गये हैं। इसके अतिरिक्त मार्क्सवादी विचारधारा और अन्य दार्शनिक विचारों की कई पुस्तकों तथा रूसी क्रान्ति, सोवियत समाजवाद व बोल्शेविज्म के इतिहास की कई पुस्तकों के हवाले से भगतसिंह ने अपनी नोटबुक में टिप्पणियां दर्ज की हैं।

अध्ययन और साथियों से लम्बे विचार-विमर्श के बाद, बोर्स्टल जेल में रहते समय भगतसिंह इस नतीजे पर मुकम्मिल तौर पर पहुंच चुके थे कि मुट्ठी भर बहादुर नौजवानों के गुप्त संगठन, उनकी कुर्बानियों और कुछ तोड़ फोड़ तथा जालिम अफसरों-जासूसों की हत्या से जनता में जागृति आ जायेगी, वह उठ खड़ी होगी और आजादी मिल जायेगी—यह संभव नहीं है। औपनिवेशिक सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए शस्त्र बल की जरूरत होगी, पर इस शस्त्र बल का इस्तेमाल व्यापक जनता करेगी। इसके लिए किसानों-मजदूरों सहित व्यापक जनता को पहले जगाना होगा और उनके व्यापक जन संगठन खड़े करने होंगे। जनता के इन संगठनों को दिशा और नेतृत्व देने का काम तपे-तपाये क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं की संगठित गुप्त टीम करेगी और वही नेतृत्वकारी क्रान्तिकारी पार्टी होगी।

भगतसिंह के ये विचार अपने सर्वाधिक विकसित रूप में फरवरी 1931 के उनके अन्तिम महत्वपूर्ण दस्तावेज **'क्रान्तिकारी कार्यक्रम का मसौदा'** में देखने को मिलते हैं जिसका एक हिस्सा छापकर बांटने के लिए **'नवयुवक राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम पत्र'** के रूप में लिखा गया है और दूसरा हिस्सा क्रान्तिकारी साथियों के बीच विचार-विमर्श के लिए प्रस्तुत मसौदे के रूप में। इसके पहले के 1929-30 के पत्रों-वक्तव्यों में भी भगतसिंह की विचारयात्रा के महत्वपूर्ण मुकामों की शिनाख्त की जा सकती है।

19 अक्टूबर 1929 को पंजाब छात्र संघ, लाहौर के दूसरे अधिवेशन को भेजे गये अपने संदेश में भगतसिंह ने लिखा था : **"इस समय हम नौजवानों से यह नहीं कह सकते कि वे बम और पिस्तौल उठायें। आज विद्यार्थियों के सामने इससे भी महत्वपूर्ण काम है।... नौजवानों को क्रान्ति का यह संदेश देश के कोने-कोने में पहुंचाना है, फैक्टरी-कारखानों के क्षेत्रों में, गंदी बस्तियों और गांवों की जर्जर झोंपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलख जगानी है जिससे आजादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा।"**

फरवरी 1931 के ऊपर उल्लिखित अपने ऐतिहासिक मसौदा दस्तावेज में भगतसिंह ने स्पष्ट कहा था कि **"आतंकवाद हमारे समाज में क्रान्तिकारी चिन्तन के पकड़ के अभाव की अभिव्यक्ति है; या एक पछतावा। इसीतरह यह अपनी असफलता का स्वीकार भी है।... आतंकवाद अधिक से अधिक साम्राज्यवादी ताकत को समझौते के लिए मजबूर कर सकता है। ऐसे समझौते, हमारे उद्देश्य —पूर्ण आजादी से हमेशा ही कहीं दूर रहेंगे। इस प्रकार आतंकवाद, एक समझौता, सुधारों की एक किश्त निचोड़कर निकाल सकता है और इसे ही हासिल करने के लिए गांधीवाद जोर लगा रहा है। वह चाहता है कि दिल्ली का शासन गोरे हाथों से भूरे हाथों में आ जाये। यह लोगों के जीवन से दूर हैं और इनके गद्दी पर बैठते ही जालिम बन जाने की बहुत सम्भावनाएं हैं।"**

भगतसिंह ने आतंकवाद की सीमाओं और गांधीवाद के असली चरित्र को पहचानने के साथ ही यह भी स्पष्ट कहा कि **"गांवों और कारखानों में किसान और मजदूर ही असली क्रान्तिकारी सैनिक हैं।"** उनके अनुसार, **"क्रान्ति राष्ट्रीय हो या समाजवादी, जिन शक्तियों पर हम निर्भर हो सकते हैं, वे हैं किसान और मजदूर।"**

भगतसिंह ने स्पष्ट कहा कि कांग्रेस के 'बुर्जुआ' नेता किसानों-मजदूरों को उनके वास्तविक लक्ष्य के लिए संगठित कर ही नहीं सकते, हां, उन्हें बरगलाकर इस्तेमाल अवश्य कर सकते हैं। उन्होंने इसी दस्तावेज में युवा राजनीतिक कार्यकर्ताओं को सलाह दी है कि वे मार्क्स और लेनिन का अध्ययन करें, उनकी शिक्षा को अपना मार्गदर्शक बनायें, जनता के बीच जायें, मजदूरों-किसानों और शिक्षित मध्यवर्गीय नौजवानों के बीच काम करें, उन्हें राजनीतिक दृष्टि से शिक्षित करें, उनमें वर्ग-चेतना उत्पन्न करें, उन्हें यूनियनों में संगठित करें, आदि। साथ ही, लेनिन को उद्धृत करते हुए उन्होंने एक ऐसी क्रान्तिकारी पार्टी की (जिसका नाम उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी रखने का सुझाव दिया है) जरूरत पर बल दिया है जो मुख्यतः पेशेवर क्रान्तिकारी—ऐसे पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं पर निर्भर हो जिनकी क्रान्ति के सिवा न कोई आकांक्षा हो, न ही जीवन का दूसरा कोई लक्ष्य।

उक्त दस्तावेज में भगतसिंह ने क्रान्ति का जो कार्यक्रम प्रस्तुत किया है वह साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने के बाद सामंतवाद की समाप्ति तक ही सीमित न रहकर सर्वहारा राज्य के अन्तर्गत कारखानों और भूमि के राष्ट्रीकरण तथा आवास-शिक्षा आदि की गारण्टी का समाजवादी कार्यक्रम है।

एक सपना जो पूरा न हो सका !

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी, जो भगतसिंह की शहादत के पहले अस्तित्व में आ चुकी थी, व्यापक मेहनतकश अवाम को संगठित करके उनके सपनों को पूरा कर सकती थी। लेकिन उसकी वैचारिक और सांगठनिक कमजोरी तथा नेतृत्व के बड़े हिस्से के

अवसरवादी होने के कारण ऐसा नहीं हो सका। 1945-46 में पूरे विश्व के करवट बदलने के साथ ही भारत भी उठ खड़ा हुआ था। नौसेना की ऐतिहासिक बगावत के बाद थल सेना और वायुसेना में भी विद्रोह की स्थितियां उत्पन्न हो चुकी थीं। मजदूरों की हड़तालों का अनवरत सिलसिला जारी था और छात्र-युवा भी संघर्ष की अगली कतारों में थे। **तेलंगाना, तेभागा** और **पुनप्रा-वायलार** के किसान-संघर्ष जंगल की आग की तरह फैल रहे थे। इस शानदार स्थिति का भी यहां की कम्युनिस्ट पार्टी लाभ न उठा सकी। क्रान्ति के अधूरे प्रयास विफल हो गये। पीछे हटने को बाध्य उपनिवेशवादी जाते-जाते वही कर गये जिसका अंदेशा था। राजनीतिक सत्ता वे भारतीय पूंजीपति वर्ग की पार्टी कांग्रेस के हाथों में सौंप गये।

1951 में तेलंगाना की पराजय के बाद यहां की कम्युनिस्ट पार्टी पूरी तरह संसदमार्गी होकर पूंजीवादी सत्ता की ही एक सुरक्षा-पंक्ति बनकर रह गई और भगतसिंह के विचारों एवं सपनों का वारिस बन पाने का हक पूरी तरह खो बैठी।

1967 में **नक्सलबाड़ी** के किसान उभार से जो नई शुरुआत हुई, वह जल्दी ही आतंकवाद की उसी गलती का शिकार हो गई, जिसकी आलोचना भगतसिंह ने भी अपने अंतिम दिनों में की थी। इस धारा के सर्वहारा क्रान्तिकारी अपनी विचारधारात्मक कमजोरियों के चलते देश की नई परिस्थितियों को भी समझने में असफल रहे। क्रान्तिकारी इतिहास का यह दौर भी अब बीत चुका है। अब एक नया दौर शुरू हो चुका है। आज आर्थिक नव उपनिवेशवाद के नये दौर की नई क्रान्ति के लिए बिखरी हुई क्रान्तिकारी शक्तियों को एकजुट करने का क्रान्तिकारी कतारों में छात्रों-युवाओं के बीच से नई भरती करने का तथा किसानों-मजदूरों को संगठित करते हुए उनके भीतर से भी क्रान्तिकारी नेतृत्व पैदा करने का कार्यभार हमारे सामने है। एक बार फिर देश स्तर पर क्रान्तिकारी संगठन बनाना होगा जिसके कार्यकर्ता साम्राज्यवाद-पूंजीवाद विरोधी नई क्रान्तियों के हिरावल होंगे। आज की परिस्थितियों में भगतसिंह के सपने को पूरा करने का रास्ता यही होगा, क्योंकि इतिहास वहीं रुका हुआ क्रान्ति की प्रतीक्षा नहीं कर रहा है जहां वह भगतसिंह की शहादत के समय, 1931 में था।

'47 का ऐतिहासिक छल और आधी सदी का अंधेरा

आज उस आजादी के बाद पचास वर्षों का समय बीत चुका है, जो हमें कांग्रेस के नेतृत्व में मिली।

पचास वर्षों के भीतर देशी पूंजीवादी सत्ता की गोलियों ने उससे अधिक जनता का खून बहाया है, जितना दो सौ वर्षों के दौरान अंग्रेजों ने बहाया था। कहने को जनतंत्र है, पर अन्यायी सत्ता के विरुद्ध उठने वाली हर आवाज को, हर आन्दोलन को कुचल देने के लिए न तो नये-नये काले कानूनों की कमी है, न जेलों, पुलिस और फौज की। दमनकारी तंत्र अंग्रेजों के समय से अधिक संगठित, मजबूत और आधुनिक है। साथ ही, पुराने औपनिवेशिक कानून भी आजतक मौजूद हैं। प्रतिदिन देश के किसी न किसी कोने में छात्रों, मजदूरों या किसानों पर गोलियां चल रही हैं।

पूर्वोत्तर भारत और कश्मीर की जनता गत आधी सदी से फौजी संगीनों के साये तले जी रही है। अरबों-खरबों के घोटाले, घटिया बुर्जुआ जातिवादी और कट्टरपंथी धार्मिक राजनीति के हथकण्डे, साम्प्रदायिक दंगे, दलित उत्पीड़न, नारी उत्पीड़न का लगातार बढ़ता घटाटोप—यही है आजादी के पचास वर्षों बाद का राजनीतिक-सामाजिक परिदृश्य।

15 अगस्त 1947 को भारत न सिर्फ विदेशी कर्जे से पूरी तरह मुक्त था, बल्कि उल्टे ब्रिटेन पर भारत का 16.62 करोड़ रुपये का कर्ज था। आज देश पर कुल 50 खरब रुपये का विदेशी कर्ज लदा है जो भारत सरकार की कुल सम्पत्ति के लगभग बराबर है। 1948-49 में भारत का साम्राज्यवादी शोषण 20 करोड़ रुपये था जो 1995-96 तक बढ़कर 3 खरब रुपये हो चुका था। पिछले पचास वर्षों के दौरान ऊपर के करीब सौ बड़े पूंजीपति घरानों की पूंजी में दो गुने-चौगुने की नहीं बल्कि दो सौ गुने से लेकर चार सौ गुने तक की बढ़ोत्तरी हुई है जबकि दूसरी ओर आधी आबादी को शिक्षा और दवा-इलाज तो दूर, भरपेट भोजन भी मयस्सर नहीं है।

1947 में देश को जो अधूरी और विकलांग आजादी मिली, उसका पूरा फायदा सिर्फ ऊपर की बीस फीसदी धनिक आबादी को ही मिला है जो पूंजीपतियों की चाकरी बजाती है और साम्राज्यवादियों के तलवे चाटने के लिए तैयार है।

1947 में सत्तासीन होने के बाद भारत के पूंजीपतियों ने साम्राज्यवादी ताकतों के छुटभैये की स्थिति को स्वीकार करके पूंजीवादी विकास का रास्ता चुना। ब्रिटेन की जगह देश सभी साम्राज्यवादी ताकतों का चरागाह बन गया। शासक वर्ग इस या उस साम्राज्यवादी ताकत से मोल तोल करके तकनोलाजी और पूंजी लेता रहा तथा उन्हें लूटने का अवसर देकर खुद भी लूटता रहा। समाजवाद का नारा देकर 'पब्लिक सेक्टर' खड़ा किया गया ताकि जनता को निचोड़कर पूंजी जुटाई जा सके। गांवों में सामंतों की जमीन छीनने की जगह उन्हें यह अवसर दिया गया कि वे पूंजीवादी भूस्वामी बन जायें। साथ ही पहले के धनी काश्तकार भी खेतों के मालिक होकर मुनाफाखोर कुलक बन गये। मध्यम और छोटे किसान पूंजी की मार से उजड़कर सर्वहारा की कतारों में शामिल होते चले गये।

चालीस साल बीतते-बीतते पब्लिक सेक्टर का पूंजीवाद बोझ बन गया। जनता की गाढ़ी कमाई से खड़े किये गये उद्योगों को निजी पूंजीपतियों के हाथों में सौंपा जाने लगा। निजीकरण की इस नीति के साथ ही, उदारीकरण के नाम पर विदेशी लूट के लिए भी अर्थव्यवस्था के दरवाजों को पूरी तरह खोल दिया गया। वर्तमान दशक के शुरू से कांग्रेस से लेकर संयुक्त मोर्चा सरकार ने इन्हीं नीतियों को लागू किया है और अब भाजपा की सरकार हो या कोई भी और सरकार आये—आर्थिक नीतियों में कोई बदलाव नहीं आने वाला, क्योंकि यह रास्ता पूंजीवाद के पास एकमात्र विकल्प है, देश स्तर पर भी और विश्व स्तर पर भी।

और यह आखिरी विकल्प भी पूंजीवाद के संकट को घटाने के बजाय लगातार बढ़ाता ही जा रहा है। तीसरी दुनिया के तमाम देशों की तरह भारत भी आज एक ज्वालामुखी के दहाने पर बैठा हुआ है। यही नहीं, बढ़ते संकट के चलते जन आंदोलनों का ज्वार अब पश्चिमी देशों की सड़कों पर भी उमड़ने लगा है।

भारत में बेरोजगारों की संख्या इस समय 20 करोड़ है जो इस सदी के अंत तक इससे दूनी हो जायेगी। उदारीकरण-निजीकरण की नीतियां लागू होने के बाद तीन लाख छोटे-बड़े उद्योग बंद हो चुके हैं और करोड़ों मजदूर बेकार हो चुके हैं। देश की आजादी की असलियत तो काफी पहले ही सामने आ

चुकी थी, अब इसका सबसे नंगा और सबसे गंदा रूप हमारे सामने है।

वह जलता हुआ प्रश्न जो हमारी आंखों में झांक रहा है!

एक नई क्रान्ति का प्रबल झंझावात ही इस नर्क से हमें उबार सकता है। इसके लिए, जैसा कि भगतसिंह ने जेल की कालकोठरी से संदेश दिया था, नौजवानों को आगे आना होगा और क्रान्ति की स्पिरिट को ताजा करने के लिए कुर्बानी की भावना से ओतप्रोत होकर आना होगा। उन्हें "क्रान्ति की तलवार विचारों की सान पर तेज" करनी होगी, यानी आज की परिस्थितियों का, साम्राज्यवाद और पूंजीवाद का अध्ययन करना होगा, क्रान्ति के विज्ञान का अध्ययन करना होगा और इतिहास का भी। फिर उन्हें कारखानों और गांवों तक क्रान्ति का संदेश लेकर जाना होगा और जनता को संगठित करना होगा।

फांसी से तीन दिन पहले भगतसिंह ने लिखा था : "**हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह लड़ाई तबतक चलती रहेगी जबतक कि शक्तिशाली व्यक्तियों ने भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार कर रखा है—चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूंजीपति और अंग्रेज या सर्वथा भारतीय ही हों, उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है।**"

यही संदेश आज एक-एक जीवित हृदय तक पहुंचाना है कि यह लड़ाई आज भी जारी है और यह आज एक ऐसे मुकाम पर पहुंच चुकी है जब पूंजीवादी सत्ता पर फैसलाकुन चोट की जा सकती है।

पर कोई भी सामाजिक क्रान्ति अपने-आप सम्पन्न नहीं होती। निश्चित, सचेतन तैयारी के बिना बीच-बीच में विद्रोह तो होते रह सकते हैं, पर ऐसी क्रान्ति नहीं हो सकती जो नई सामाजिक व्यवस्था के जन्म में धाय का काम करती है।

शहीदे-आजम भगतसिंह ने जिस आजादी का सपना देखा था, उसे पूरा करने के लिए उन्होंने फांसी की कालकोठरी से युवाओं का आह्वान किया था। पूंजीवादी शासन के रूप में मिली अधूरी, खण्डित, विकलांग आजादी की आधी सदी के दुखदाई सफरनामे के बाद भी क्या नौजवानों की यह पीढ़ी उस सपने को यथार्थ में बदलने के लिए तैयार नहीं है? —यह जलता हुआ प्रश्न आज हमारी आंखों में झांक रहा है।

सपने अपनेआप पूरे नहीं होते। उन्हें सिर्फ पालने से भी कुछ नहीं होता। सपनों से सिर्फ शुरुआत होती है। सपने अंत नहीं। आने वाले दिनों के ऐतिहासिक तूफान को एक निश्चित दिशा देकर सामाजिक क्रान्ति में रूपान्तरित करने के लिए हमें आज ही से तैयारियों में जुट जाना होगा।

"एक सपने को टालते रहने से
क्या होता है ?
क्या वह सूख जाता है
किशमिश सा धूप में ?
या जख्म सा पक जाता है
और फिर रिसा करता है ?
.....
मुमकिन है वह सिर्फ लच जाता हो
भारी बोझे जैसा।
कहीं वह बारूद-सा फट तो नहीं पड़ता ?"
(लैंग्स्टन ह्यूज)

● सत्यम वर्मा

भगतसिंह के लेखों के संकलन **'विचारों की सान पर'** का सम्पादकीय

अगर आपकी जीन्स बोल सकती...

(पृष्ठ 41 का शेष)

पर भरोसा न हो तो दिल्ली के गोविन्दपुरी और नोएडा के एनईपीजेड में जाकर खुद अपनी आंखों से देख सकते हैं। हर औद्योगिक क्षेत्र हजारों बचपनों, अनगिनत सपनों-उम्मीदों की कत्लगाह है। देश की बर्बर सत्ता एक ओर तो बाल मजदूरों की दुर्दशा पर आंसू बहाती है और दूसरी ओर फ्लाइंग मशीन, ली, हैगर, गैप, किलर और वांटेड जैसे देशी-विदेशी भेड़ियों को बच्चों के सस्ते श्रम की लूट-खसोट की छूट देने के लिए 'फ्री ट्रेड जोन' और 'एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन' बनवा रही है।

यह सवाल बरबस ही दिमाग में उठता है कि इस लुटेरे तंत्र को खत्म किये बिना क्या "बचपन बचाया" जा सकता है?

मुनाफे की हवस में पागल इन वहशियों को किसी भी तरह सस्ता श्रम चाहिए। और इसके लिए वे तीसरी दुनिया के गरीब मुल्कों में आते हैं जहां की सरकारें बच्चों, औरतों और बदहाल, मजबूर मजदूरों के शरीर से एक-एक बूंद खून निचोड़ लेने में उनकी मदद के लिए सबकुछ करने को तत्पर रहती हैं। और फिर बेशर्मी भरे गर्व से दावा करती हैं कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियां रोजगार के अवसर बढ़ा रही हैं।

इन गारमेंट फैक्टरियों की यह एक झलक भर है जो रोंगटे खड़े कर देती है। अगर वाकई हमारे कपड़ों के पास जुबान होती तो काम करने के भयावह हालात, भुखमरी-कुपोषण-बीमारी से भरी जीवन स्थितियों, बालश्रम के क्रूर शोषण, गुलामों जैसे व्यवहार और मुनाफे की हवस तले रौंदे जा रहे बचपनों की कहानी सुनाते।

वे हमें बताते कि "मुक्त व्यापार" का हम तीसरी दुनिया में रहने वाले आम जनता के बेटे-बेटियों और पूरी दुनिया के मजदूरों के लिए क्या मतलब है? ●

मुनाफाखोरों के लिए मजदूरों का श्रम ही नहीं, जान भी सस्ती है

तीसरी दुनिया के गरीब मुल्कों में बहुराष्ट्रीय वस्त्र कम्पनियों के लिए महंगे से महंगे कपड़े तैयार करने वाले मजदूरों का श्रम ही नहीं, उनकी जान भी बेहद सस्ती है।

पिछले दिनों बंगलादेश में एक गारमेंट फैक्ट्री में लगी भीषण आग में करीब 100 मजदूर जिंदा जल मरे। इनमें आधी से ज्यादा महिलाएं थीं। 200 से अधिक मजदूर जलने से घायल हुए। एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी के लिए विन्टवीयर तैयार करने वाली इस फैक्ट्री में रात की पाली में 700-800 मजदूर काम करते थे। मालिक रोज रात को ढोर-डांगर की तरह उन्हें भीतर बंद कर बाहर से ताला लगा कर जाता था। आग की लपटों में घिरे मजदूरों के लिए बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं था। वे तड़पते रहे, चीखते रहे, पर कोई उनकी आवाज सुनने वाला भी नहीं था। बहुत से मजदूरों की दम घुटने से मौत हो गई।

इससे कुछ ही महीने पहले ढाका में एक और गारमेंट फैक्ट्री की आग में 12 मजदूर मारे गये थे।

यहीं इस भयानक सच्चाई की भी याद दिला देनी चाहिए कि 26 जनवरी को गुजरात में आये भूकम्प के समय धनपतियों के लिए हीरे तराशने वाले न जाने कितने कारीगर इसलिए नहीं बच सके क्योंकि वे जिन वर्कशापों में काम करते थे उनके दरवाजों पर रात को मालिक लोग बाहर से ताला लगा देते थे।

कविता

शशि प्रकाश

नयी सदी में भगतसिंह की स्मृति

एक दुर्निवार इच्छा है
या एक पागल-सा संकल्प
कि हमें तुम्हारा नाम लेना है एक बार
किसी शहर की व्यस्ततम सड़क के बीचो-बीच
खड़े होकर
एक नारे, एक विचार, एक चुनौती
या एक स्वगत-कथन की तरह,
जैसे कि पहली बार,
और अपने को एकदम नया महसूस करते हुए।
नहीं,
यह कोई कर्ज उतारना नहीं,
देश की छाती से कोई बोझ हटाना भी नहीं
विस्मृति की ग्लानि का
(वह यूं कि जब स्मृति थी
तब भी कितना था परिचय वास्तव में?)
यह तो महज
अंधेरे में रख दिये गये एक दर्पण के बारे में
कुछ बातचीत करनी है अपने-आप से।
सोचना है कि अंधेरे तक
किस तरह ले जाया गया था वह दर्पण
और किस तरह अंधेरा लाया जा रहा है आज
हर उस जगह
जहां कोई दर्पण है।
जहां भी है परावर्तन की सम्भावना,
किरणों का प्रवेश वर्जित है
और कहीं आग लग रही है
कहीं गोली चल रही है।[1]

●

हमें तुम्हारा नाम लेना है
उठ खड़े होने की तरह,
या एक प्रत्याक्रमण की तरह,
देश को धकापेल बनाने या
वाशिंगटन डी.सी. का कूड़ाघर बनाने की
बर्बर-असभ्य या
कला-कोविद कोशिशों के विरुद्ध।
नहीं, यह कोई भाव-विह्वल श्रद्धांजलि नहीं,
यह नीले पानी वाली उस गहरी झील तक
फिर एक यात्रा है
उग आये झाड़-झंखाड़ों के बीच
खो गया रास्ता खोजने की कोशिश करते हुए,
या शायद, कोई भी राह बनाकर वहां तक पहुंचने
की एक जद्दोजहद भर है,
या शायद ऐसा कुछ
जैसे हम किसी विचार के छूटे हुए सिरे को
पकड़ते हैं
आगे खींचने के लिए।

●

हमें तुम्हारा नाम लेना है
इसलिए नहीं कि तुम्हारे नामलेवा नहीं।
संसद के खम्भे भी तुम्हारा नाम लेते हैं
बिना किसी उच्चारण-दोष के
और वातानुकूलित सभागारों में
तुम्हारी तस्वीरें हैं और फूलमालाएं हैं
और धूपबत्तियों का खुशबूदार धुआं है।
एक ख्यातिलब्ध राजनयिक कहता है
कि तुम प्रयोग कर रहे थे क्रान्ति के साथ
और बाजार सुनता है
और रक्तसने हत्यारे हाथों से
विमोचित हो रही है
तुम्हारी शौर्य-गाथा पर आधारित नई बिकाऊ किताब
और एक बूढ़ा विलासी पियक्कड़ पत्रकार
अपने अखबारी कॉलम में तुम्हें याद करता हुआ
अपने पूर्वजों के पाप धो रहा है।

●

हमें तुम्हारा नाम लेना है
कि वे लोग ले रहे हैं खूब तुम्हारा नाम
जिन्हें खतरा है
लोगों तक पहुंचने से तुम्हारा नाम
अपने सही अर्थों में।
इसलिए सुनिश्चित ऐतिहासिक अर्थों का
संधान करते हुए
हमें फिर थकी हुई नींद में डूबे
घरों तक जाना है लेकर तुम्हारा नाम।
कई बार हमें विचारों को कोई नाम देना होता है
या कोई संकेत-चिन्ह
और हम मांगते हैं इतिहास से ऐसा ही कोई नाम
और उसे लोगों तक
विचार के रूप में लेकर जाते हैं।

●

हमें तुम्हारा नाम लेना है
एक बार फिर
गुमनाम मंसूबों की शिनाख्त करते हुए
कुछ गुमशुदा साहसिक योजनाओं के पते ढूंढ़ते हुए
जहां रोटियों पर मांओं के दूध से

अदृश्य अक्षरों में लिखे
पत्र भेजे जाने वाले हैं, खेतों-कारखानों में
दिहाड़ी पर खटने वाले पच्चीस करोड़ मजदूरों,
बीस करोड़ युवा बेकारों,
उजड़े बेघरों और गिरफ्तार आधे आसमान की ओर से।
उन्हें एक दर्पण, नीले पानी की एक स्वच्छ झील,
एक आग लगा जंगल और धरती के बेचैन गर्भ से
उफनने को आतुर लावे की पुकार चाहिए।
गंतव्य तक पहुंचकर
अदृश्य अक्षर चमक उठेंगे लाल टहकदार
और तय है कि
लोग एक बार फिर इंसानियत की रूह में
हरकत पैदा करने के लिए सोचने लगेंगे।[2]

●

तुम्हारा नाम हमें लेना है
उस समय के विरुद्ध
जब सजीव चीजों में निष्प्राणता भरी जा रही है
एक उज्ज्वल सुनसान में
जहां रहते हैं शिल्पी और सर्जक बस्तियां बसाकर,
और कभी दिन थे, जब हालांकि अंधेरा था,
पर अनगिन कारीगर हाथों ने
मिट्टी, राख, रक्त, पानी, धूप और
कामनाओं-संकल्पों-स्मृतियों-स्वप्नों को गूंथकर
गढ़े थे लोग
विचारों ने बनाया था जिन्हें सजीव-गतिमान।

●

तुम्हारा नाम हमें लेना है
कि अधबने रास्ते कभी खोते नहीं,
हरदम कचोटते रहते हैं कि वे दिलों में
जागते रहते हैं
और पीढ़ियों तक धैर्यपूर्ण प्रतीक्षा के बाद
वे फिर आगे चल पड़ते हैं
और जब भी
पहुंचते हैं अपनी चिरवांछित मंजिल तक,
तो वहां से
एक नई राह आगे चलने लगती है।

●

तुम्हारा नाम हमें लेना है
विस्तृत और आश्चर्यजनक सागर पर विश्वास करते हुए
और इतिहास का लंगर छिछले पानी में डालने की[3]
कोशिशों के खिलाफ,
और विचारों के खिलाफ जारी
चौतरफा युद्ध के खिलाफ,
और उम्मीद जैसे शब्दों को
संग्रहालयों में रख देने के फैसलों के खिलाफ।
... या तो हमें कविता में लानी है यह बात
या फिर किसी भी तरह की काव्यकला के
आग्रह के बिना ही कह देना है कि
यह सत्ता पलट देनी होगी
जो पूरी नहीं करती हमारी बुनियादी जरूरतें
और छीनती है हमारे बुनियादी अधिकार[4]
और विद्वज्जन हैं कि मुख्य सड़कें छोड़कर
पिछवाड़े की गन्दगी और कूड़े भरी गलियों से होकर
आ-जा रहे हैं, ढूंढ़ते हुए कविता का अर्थात्
मेरकूरी अव्देविच की तरह[5]
और तकिये में सोने की गिन्नियां छुपाये
तीर्थाटन पर निकलने को तैयार हैं भिक्षुवेश में
यदि समय कोई ऐसा-वैसा आ जाये तो।
...बल्कि सबसे अच्छा तो यह होगा कि
बेहद ईमानदार निजी दुखों, प्यार, झाग, आदिम सरोकारों,
शब्दों, तरलता, मौन, चिन्तन के अकेलेपन,
जनता के सुनसान, पुरस्कार-कामना-बोझिल मन,
सीढ़ियों, रस्सियों, नकबजनी के औजारों और
निर्लिप्त खबरों से भरी
धूसर, चमकीली या सांवली-सलोनी निर्दोष सी कविताओं के
पाठ के बाद, किसी शाम,
जब अपनी पारी आये
तो बस दुहरा दिये जायें
तुम्हारे ये सीधे-सादे शब्द :
"इंकलाब जिन्दाबाद।"

(22-23 मार्च, 2000)

सन्दर्भ :

1. मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' की पंक्तियां : "...कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी"

2. भगतसिंह के इस प्रसिद्ध कथन का सन्दर्भ कि "जब नौजवान की स्थिति लोगों को अपने शिकंजे में जकड़ लेती है" तो इस परिस्थिति को बदलने के लिए जरूरी होता है कि "क्रान्ति की स्पिरिट ताजा की जाय ताकि इंसानियत की रूह में हरकत पैदा हो।"

3. 'नौजवान भारत सभा' के घोषणापत्र में उद्धृत कविता की पंक्तियां हैं : "लंगर डाले हुए छिछले पानी में पड़ता है
विस्तृत और आश्चर्यजनक सागर पर विश्वास करो
जहां ज्वार हरदम ताजा रहता है—
और शक्तिशाली धाराएं स्वतंत्र होती हैं—"

4. 5 मई, 1930 को विशेष ट्रिब्यूनल को लिखे अपने पत्र में भगतसिंह ने इसी आशय की बात कही थी।

5. फेदिन की प्रसिद्ध उपन्यास-त्रयी 'पहली उमंगें' और 'आग्नेय वर्ष' भाग एक और दो) का एक कंजूस व्यापारी पात्र।

एक और इन्तिफ़ादा

आजादी, स्वाभिमान और मानवीय गरिमा के लिए बहादुर फलस्तीनी छात्र-नौजवान एक बार फिर सड़कों पर

अरविन्द सिंह

लगभग सात वर्षों की बेचैन खामोशी के बाद एक बार फिर इन्तिफादा फूट पड़ा है। नया इन्तिफादा—यानी फलस्तीनी जनता का नया जनउभार—एक आजाद फलस्तीन के लिए, इंसाफ और मानवीय गरिमा की हिफाजत के लिए। 1987-1992 तक चले इन्तिफादा के पहले ज्वार की तरह इस बार भी बहादुर फलस्तीनी छात्र-नौजवान संघर्ष की अगली कतारों में हैं और कुर्बानियों की नयी-नयी मिसालें कायम कर रहे हैं।

नये इन्तिफादा ने दुनिया को जता दिया है कि स्वशासन के नाम पर अपने वतन की लूली-लंगड़ी आजादी फलस्तीनी जनता को स्वीकार नहीं। अमेरिकी सरपरस्ती और अपनी फौजी ताकत से मगरूर इस्रायली शासकों को भी यह दो-टूक सन्देश मिल गया है कि फलस्तीनी जनता शान्ति जरूर चाहती है, लेकिन अपने स्वाभिमान और मानवीय गरिमा को खोकर नहीं। पिछले चार महीनों से इस्रायली फौजें बर्बर दमन-चक्र चला रही हैं, लेकिन दबने के बजाय इन्तिफादा जोर पकड़ता जा रहा है।

पिछले चार महीनों में अब तक चार सौ से भी अधिक फलस्तीनी नागरिक, जिनमें अधिकतर नौजवान हैं इस्रायली बमबारी और गोलीबारी में शहीद हो चुके हैं। लेकिन हर नयी शहादत उनके इरादों को और अधिक फौलादी बनाती जा रही है। इन्तिफादा की गर्मी समूचे अरब जगत में पहुंच चुकी है। अरब देशों की जनता भी फलस्तीनी अवाम के समर्थन में सड़कों पर निकल पड़ी है। इसने वहां के शासकों को भी मजबूर कर दिया है कि बेमन से ही सही वे फलस्तीनी जनता के पक्ष में हरकत में आयें। इन्तिफादा शुरू होने के एक महीने के भीतर ही अरब देशों के शासकों को एक सम्मेलन के जरिये इस्रायली शासकों को कड़ी चेतावनी देने के लिए मजबूर होना पड़ा।

यह सब देखकर इस्रायली शासकों और उनके आकाओं की रातों की नींद हराम है। फलस्तीनियों से निपटने के सवाल पर इस्रायली शासकों में पहले से मौजूद दरार और अधिक चौड़ी हो गयी है। इन्तिफादा शुरू होने के बाद इस्रायली राजनीति में जो उठापटक मची वह उनके बीच मची हड़बोंग का ही नतीजा है। इस्रायली प्रधानमंत्री एहुद बराक द्वारा अचानक इस्तीफा देकर चुनाव कराने की घोषणा, चुनाव में इस्रायली शासक वर्ग के सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी धड़े के प्रतिनिधि लिकुड पार्टी के नेता एरियल शेरोन की 6 फरवरी के चुनाव में प्रधानमंत्री के पद पर जीत और जीत के बाद सबको साथ लेकर चलने की घोषणा—यह सब उनके बीच मची फूट और अफरातफरी का जाहिर होना है।

इधर, फलस्तीनी मुक्ति संगठन के नेता यासर अराफात के लिए भी इन्तिफादा खुशियों से ज्यादा चिन्ता का सबब बन गया है। शान्ति वार्ताओं की मेज पर कोई समझौता न होने पर सड़क पर उतरे लोगों की भावनाओं को नजरअन्दाज करना उनके लिए पहले से कहीं अधिक मुश्किल हो गया है। पिछले समझौते का कड़ुआ घूंट पी चुके लोग इस बार शायद अराफात को माफ न कर पायें। खासकर फलस्तीनी युवाओं की बगावती भावनाओं को नजरअन्दाज करना इस बार अराफात के लिए महंगा साबित हो सकता है।

ओस्लो समझौता और फलस्तीनी जनता के साथ खुला विश्वासघात

13 सितम्बर 1993 को नार्वे की राजधानी ओस्लो में अमेरिकी मध्यस्थता में फलस्तीनी नेतृत्व और इस्रायली शासकों के बीच हुआ समझौता फलस्तीनी जनता की चाहतों को पूरी तरह दर्ज नहीं कर सका था।

1993 के ओस्लो समझौते में फलस्तीन के लगभग 73 प्रतिशत भूभाग पर सिर्फ 33 प्रतिशत यहूदी आबादी के लिए इस्रायली राज्य को औपचारिक रूप से सुपर्द कर देना पड़ा था। दरअसल यह फलस्तीनी नेतृत्व की मजबूरी थी। पर जो हासिल हुआ, उसे फलस्तीनी जनता किसी भी रूप में दिल से स्वीकार नहीं कर सकती थी। समझौते में गाजा पट्टी और पश्चिमी तट के जेरिको क्षेत्र में फलस्तीनी मुक्ति संगठन को सिर्फ सीमित स्वशासन का अधिकार मिला। यह समझौता हुआ था कि इन क्षेत्रों में इस्रायली सैनिक प्रशासन की जगह पी.एल.ओ. पुलिस ले लेगी लेकिन सिर्फ पर्यटन, शिक्षा, कल्याण, स्वास्थ्य व कराधान पर ही पी.एल.ओ. का अधिकार होगा। राज्यसत्ता के केन्द्रीय विषयों—एक स्वतंत्र सेना व राजनीतिक संस्थाओं के निर्माण, दूसरे राष्ट्रों के साथ स्वतंत्र संधियां करने एवं नागरिक समाज के अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर नियंत्रण का अधिकार फलस्तीनी जनता को नहीं मिल सका था।

ओस्लो समझौते में यह भी तय हुआ था कि गाजा पट्टी और पश्चिमी तट से धीरे-धीरे इस्रायली सेना पूरी तरह हट जायेगी, पूर्वी यरूशलम सहित गाजा पट्टी और पश्चिमी तट में यहूदी बस्तियां बसाने का सिलसिला खत्म होगा और पहले से बसाये गये लोगों को वापस बुला लिया जायेगा। फिर वार्ताओं के सिलसिले के जरिये अरब देशों में रह रही लगभग 40 लाख आबादी (जो कुल फलस्तीनी आबादी के 60 प्रतिशत से अधिक है), इस्रायल के गैलिली क्षेत्र में रह रही अरब आबादी (जो कुल इस्रायली आबादी का 18 प्रतिशत है) के भविष्य और इस्रायली जेलों में बन्द फलस्तीनी राजनीतिक बन्दियों के सवाल पर, फलस्तीनी राज्य के स्थायी सीमांकन और गाजापट्टी व पश्चिमी तट के बीच सुरक्षित आवाजाही के सवाल पर अन्तिम निर्णय तक पहुंचने का करार किया जायेगा।

लेकिन, समझौते के बाद पिछले सात वर्षों के दौरान इस्रायली शासक वर्ग ने फलस्तीनी जनता के साथ खुला विश्वासघात किया।

इस्रायली सुरक्षाबलों पर विशाल गुलेल से पत्थर फेंकते फलस्तीनी नौजवान

वार्ताओं के दौरान उसने किसी भी महत्वपूर्ण मुद्दे पर एक इंच भी झुकने से इंकार कर दिया। मध्यस्थता के नाम पर अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने अपनी कूटनीतिक चालों से इस्रायली शर्तों को ही फलस्तीनी अवाम पर थोपने की कोशिश की। यरूशलम पर अपना दावा छोड़ने को इस्रायल कतई तैयार नहीं हुआ। इस बात पर इस्रायली वार्ताकार अड़े रहे कि फलस्तीनी आबादी के केन्द्रों के बाहर इस्रायली सेनाओं की मौजूदगी बनी रहनी चाहिए जिससे जब वह चाहे उनकी तैनाती कर सके। फलस्तीनी राज्य को सम्पूर्ण सम्प्रभुता देने की दिशा में छोटे से छोटा कदम उठाना वह टालता रहा और अपने विस्तारवादी मंसूबों की खातिर फलस्तीनी जनता की भावनाओं को कुचलता रहा, उसके मनोबल को तोड़ता रहा, स्वाभिमान को रौंदता रहा, अपमानित करता रहा।

गाजापट्टी और पश्चिमी तट के फलस्तीनी स्वशासन वाले क्षेत्रों में इस्रायली फौजों द्वारा रोज-रोज उत्पीड़न की कार्रवाइयां बदस्तूर जारी रहीं। बेवजह फलस्तीनियों को जेलों में बन्द करना, गाजा पट्टी और पश्चिमी तट के बीच आवाजाही के नियंत्रण के लिए बनाये गये इस्रायली फौजी चेक पोस्टों पर चेकिंग के नाम पर लोगों को अपमानित करना तथा यहूदी बस्तियों को बसाना जारी रहा। अकेले यरूशलम में दो लाख यहूदियों को बसाया गया। फलस्तीनी स्वशासन वाले गाजा पट्टी व पश्चिमी तट के क्षेत्रों में भी दो लाख से अधिक यहूदी आबादी को बसाया गया। समझा जा सकता है कि बदगुमान इस्रायली शासकों की तमाम कारगुजारियों से फलस्तीनी अवाम की जिन्दगी कितनी घुटनभरी हो चली थी।

एक खामोश ज्वालामुखी फूट पड़ा और दहकता लावा बह निकला

इस्रायली शासक वर्गों और उनके आकाओं को यह गुमान था कि इन्तिफादा के पहले ज्वार के खत्म होने के बाद अब थकी-थकी हुई फलस्तीनी जनता चुपचाप उनकी शातिराना चालों को बर्दाश्त करती रहेगी। इसीलिए उन्होंने ओस्लो समझौते की आड़ में फलस्तीनी अवाम को अपमानित करने और उनके मनोबल को तोड़ने के लिए लगातार कार्रवाइयां जारी रखीं। लेकिन यहीं पर वे चूक गये। ऐसा अक्सर होता है। सत्ता के मद में चूर प्रतिक्रियावादी शासक जनता की शक्ति का आकलन करने में अक्सर चूक जाते हैं।

ओस्लो समझौते से फलस्तीनी अवाम के दिलों में जो जख्म पैदा हुआ था, वह धीरे-धीरे भर सकता था और एक बेहद छोटे भूभाग पर ही सही एक आजाद स्वाभिमानी फलस्तीनी राष्ट्र की त्रासद नियति को वे शायद स्वीकार भी कर लेते। लेकिन इस्रायली शासकों ने अपनी कारगुजारियों से लगातार पुराने जख्मों को न केवल कुरेदा वरन् नये-नये जख्म भी देते रहे। दूसरी ओर फलस्तीनी नेतृत्व के रवैये से भी फलस्तीनी अवाम के अन्दर धीरे-धीरे निराशा घर करने लगी थी। वार्ताओं से फलस्तीनी अवाम के लिए उनका नेतृत्व कुछ भी हासिल नहीं कर पा रहा था। यहां तक कि जेलों में बन्द राजनीतिक बन्दियों की रिहाई के सवाल पर भी कुछ हासिल न हो सका। नेतृत्व से फलस्तीनी जनता के असन्तोष का अनुमान सिर्फ एक घटना से लगाया जा सकता है। नवम्बर 1998 में राजनीतिक बन्दियों की रिहाई कराने में असफल फलस्तीनी वार्ताकार अबू माजेन (जो यासिर अराफात के उत्तराधिकारी माने जाते हैं) पर गाजा में नौजवानों के समूह ने हमला कर दिया था। मध्यस्थता के नाम पर इस्रायली पैरोकारी कर रहे अमेरिका की चालबाजी भी बेपर्द हो चुकी थी और अपने निहित स्वार्थों के लिए अरब देशों के शासकों की तरह-तरह की पैंतरेबाजियों से फलस्तीनी अवाम के दिलों में यह भावना घर करती जा रही थी कि शान्ति प्रक्रिया के नाम पर चल रही कवायदों से कुछ हासिल होने वाला नहीं।

गहरी घुटन, अपमानबोध, निराशा, असन्तोष की मनःस्थिति में जी रही फलस्तीनी जनता की बेचैनी घनीभूत होती जा रही थी। खासकर युवाओं के अन्दर आक्रोश का एक लावा अन्दर ही अन्दर धधक रहा था जो फूट पड़ने के लिए मुहाना तलाश रहा था। इन्हीं हालात में पिछले 28 सितम्बर को इस्रायली शासक वर्ग के घुर दक्षिणपंथी धड़े के नेता एरियल शेरोन (उस समय विपक्षी नेता और विगत 6 फरवरी के चुनावों के बाद नवनिर्वाचित प्रधानमंत्री) की सुनियोजित यरूशलम यात्रा ने जनाक्रोश के ताप को चरम बिन्दु पर पहुंचा दिया। सुषुप्त ज्वालामुखी को मुहाना मिला और वह फूट पड़ा।

यूं तो, शेरोन की यात्रा यरूशलम स्थित 'टेम्पुल माउण्ट' की लिकुड पार्टी के अपने प्रतिद्वंद्वी पूर्व प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतान्याहू पर राजनीतिक वरीयता हासिल करने की नीयत से आयोजित की गयी थी, लेकिन इसने फलस्तीनी अवाम की भावनाओं को बुरी तरह आहत कर दिया। यह वही शेरोन है जो 1982 में लेबनान के शातिला और साबरा शरणार्थी शिविरों में किये गये नरसंहार का प्रमुख सूत्रधार था। वह लगातार फलस्तीनी अवाम को अपमानित करने वाले बयान देने के लिए कुख्यात रहा है। लेकिन तत्कालीन प्रधानमंत्री एहुद बराक ने भी अपनी राजनीतिक चालबाजी (गैर यूरोपीय यहूदी आबादी, जिसके बीच मुख्यतः लिकुड पार्टी का जनाधार है, को नाराज न करने की रणनीति) के चलते शेरोन की यात्रा का कोई विरोध करने के बजाय लगभग 3000 इस्रायली सशस्त्र सैनिकों की सुरक्षा मुहैया करायी। यह सब फलस्तीनी स्वाभिमान को गहरा आघात पहुंचाने वाला साबित हुआ। और जब शेरोन की यात्रा के विरोध में प्रदर्शन कर रहे फलस्तीनी युवाओं पर इस्रायली सैनिकों ने अंधाधुंध गोलीबारी कर दी, जिसमें 7 फलस्तीनी युवक मारे गये और दर्जनों जख्मी हुए तो सब्र का बांध टूट पड़ा। और इस तरह फिर शुरू हुआ एक और इन्तिफादा। फलस्तीनी अवाम

अपनी अस्मिता और गरिमा की हिफाजत के लिए, अपनी आजादी के लिए एक बार फिर जनसैलाब के रूप में सड़कों पर उतर पड़ा।

पुराने अनुभवों से लैस नया इन्तिफादा

नये और पुराने इन्तिफादा में समानता यह है कि दोनों बार इसकी शुरुआत तब हुई है जब "शान्ति प्रयासों" के नाम पर फलस्तीनी जनता की आजादी को साम्राज्यवादियों, इस्रायली एवं अरब जगत के शासकवर्गों के निहित स्वार्थों से प्रेरित घटिया सौदेबाजियों में उलझाकर स्थगित करने या सीमित करने की चालें चली गयीं। 1967-77 के दौरान फलस्तीनी मुक्तिसंघर्ष का आगे बढ़ता हुआ कारवां आगे चलकर गतिरोध का शिकार हुआ था, जब अगले एक दशक तक "शान्तिवार्ताओं" के जरिये फलस्तीनी राष्ट्र के सवाल को लटकाया जाता रहा। इसी दौर में अमेरिकी देखरेख में मिस्र और इस्रायल के बीच **कैम्प डेविड समझौता** 1979 में हुआ था जिसमें अपने संकीर्ण हितों की पूर्ति के लिए मिस्र ने फलस्तीनी जनता के साथ विश्वासघात किया था। इस समझौते में उसने अधिकृत क्षेत्र में इस्रायली प्रभुत्व के अन्तर्गत तथाकथित फलस्तीनी स्वायत्तता की सोच को अपनी स्वीकृति दे दी थी। इस विश्वासघात के बदले इस्रायल ने 1982 तक कई चरणों में पीछे हटकर सिनाई प्रायद्वीप मिस्र को वापस लौटा दिया था। अपने-अपने निहित स्वार्थों के चलते सीरिया, लेबनान, लीबिया, जार्डन आदि देशों के शासक वर्गों ने 1977-87 के गतिरोध के दौर में फलस्तीनी आजादी के संघर्ष में मदद के बजाय फलस्तीनी मुक्ति संगठन में ही तरह-तरह से फूट डालने की कोशिश की थी। यासिर अराफात पी.एल.ओ. का मुख्यालय बनाने के लिए मारे-मारे फिर रहे थे, क्योंकि सबने लाल झण्डी दिखा दी थी। आखिरकार, अराफात को ट्यूनीशिया ने शरण दी थी। यह सब फलस्तीनी जनता के लिए विक्षोभकारी था। इन्हीं हालत में 1987 में इन्तिफादा का पहली बार विस्फोट हुआ था। ओस्लो समझौते के बाद पिछले सात वर्षों में शान्तिवार्ताओं की जो कवायद चली है, उसके मद्देनजर नये इन्तिफादा की पृष्ठभूमि में विश्वपरिस्थितियों में हुए फिलहाली बदलावों के अलावा कमोबेश एक-सी परिस्थितियां काम कर रही थीं।

लेकिन, दोनों इन्तिफादा में कुछ अहम फर्क हैं जो फलस्तीन के भविष्य को तय करने में अहम भूमिका निभायेंगे।

गाजा पट्टी में इस्रायली सैनिकों के हमले में दीवार में हुए छेद से झांकता फलस्तीनी बच्चा

पिछले इन्तिफादा के दौरान गाजा पट्टी और पश्चिमी तट के फलस्तीनी युवाओं ने इस्रायली हथियारबन्द सेनाओं का मुकाबला मुख्यत: गुलेलों, पत्थरों और पेट्रोल बमों से किया था। लेकिन, इस बार फलस्तीनी राष्ट्रीय प्राधिकरण (Palestinion National Authority, P.N.A.) के 40000 सुरक्षाकर्मी उनके साथ हैं, जिनके पास टैंक, मिसायलें और हेलीकॉप्टर तो नहीं हैं, लेकिन अन्य अत्याधुनिक हथियार मौजूद हैं। हालांकि, इस बार भी फलस्तीनी युवा गुलेलों की मार से इस्रायली सैनिकों पर वार कर उनकी नाक में दम किये हुए हैं। एक बार फिर वे उस यूनानी पौराणिक कथा की याद दिला रहे हैं जिसमें डेविड नाम के बालक ने भीमकाय गोलियथ को गुलेल से पत्थर चलाकर मार गिराया था।

नया इन्तिफादा पुराने के अनुभवों से लैस है। **एक स्वत: स्फूर्त जनउभार के रूप में शुरू हुआ पहला इन्तिफादा जल्दी ही एक संगठित जनान्दोलन में तब्दील हो गया था। बेहद कुशलता के साथ इन्तिफादा नेतृत्व ने संगठित प्रदर्शनों व आम हड़तालों को युवाओं की छापामार कार्रवाइयों के साथ जोड़ दिया था। इसके साथ ही बर्बर दमन-उत्पीड़न का मुकाबला करने की जरूरत ने नेतृत्व को भूमिगत होकर जनकार्रवाइयां संचालित करना सिखा दिया था। धीरे-धीरे फलस्तीनी जनता की समान्तर सत्ता का एक तंत्र भी विकसित होने लगा था। गांवों और नगरों में पापुलर कमेटियों का गठन करने के साथ-साथ उत्पादन व अन्य सामाजिक जरूरतों को पूरा करने के लिए आत्मनिर्भरता की दिशा में ठोस कदम उठाये गये थे। स्कूलों-कालेजों की बन्दी के बावजूद फलस्तीनी शिक्षकों ने बर्बर दमन-उत्पीड़न का मुकाबला करते हुए जनशिक्षा के नये-नये प्रयोग किये। यहां तक कि जेलखाने भी शिक्षालय बन गये थे।** पहले इन्तिफादा के ये तमाम अनुभव इन्तिफादा के नये दौर के लिए एक शानदार विरासत के रूप में मौजूद हैं, जिनसे प्रेरणा लेते हुए और सीखते हुए इस बार इन्तिफादा नेतृत्व अधिक परिपक्वता के साथ नेतृत्व का संचालन कर रहा है।

विगत सात वर्षों के सीमित स्वशासन के दौरान फलस्तीनी मुक्ति संगठन के अल-फतह घटक (यासिर अराफात जिसके नेता हैं) से जुड़े नेताओं व प्रशासनिक अधिकारियों पर आम मेहनतकश फलस्तीनी जनता का विश्वास कमजोर हुआ है। 'हमास' और 'जेहाद' जैसे उग्र इस्लामिक गुटों और पी.एफ.एल.पी., (पीपुल्स फ्रंट फॉर दि लिबरेशन ऑफ पैलेस्टाइन) जो मेहनतकश वर्ग की क्रान्तिकारी विचारधारा में विश्वास करता है, के बीच से कोई नया नेतृत्व उभरने की परिस्थितियां इस बार अधिक परिपक्व दिख रही हैं। यदि ऐसा नहीं होता है तो भी इतना तय है कि इस बार 'इन्तिफादा' का दबाव फलस्तीनी मुक्ति संगठन के वर्तमान नेतृत्व पर इतना जरूर रहेगा कि वह इस्रायली शासकों को कोई ऐसा रू-रियायत देने का साहस नहीं कर सकेगा, जो फलस्तीनी आम जनता, खासकर नौजवानों की भावनाओं के खिलाफ हो।

नये इन्तिफादा के साथ इस बार एक और नयी चीज आकर जुड़ी है। इस्रायली राज्य की सीमा के भीतर गलीली क्षेत्र में रहने वाली 18 प्रतिशत अरब आबादी पिछली बार इन्तिफादा के समर्थन में बहुत खुलकर सामने नहीं आयी थी। इस बार उसने खुलकर अपनी भावनाओं का इजहार किया है। इस्रायली पुलिस और कट्टर जियनवादी सशस्त्र दस्तों के साथ तीखी झड़पों में इस क्षेत्र में भी अब तक दो दर्जन से अधिक लोग मारे जा चुके हैं।

इन्तिफादा ने एक बार फिर फलस्तीनी राष्ट्र की आजादी के सवाल को समूचे पश्चिम एशिया में शान्ति का एक प्रमुख केन्द्रीय मुद्दा बना दिया है। इस सवाल से किसी न किसी रूप में जुड़े सभी पक्षों के लिए—इस्रायल, अमेरिका, दूसरे साम्राज्यवादी देशों और अरब देशों के शासकों के लिए फलस्तीनी आजादी के सवाल को लटकाये रखना अब सम्भव नहीं रह गया है। इन्तिफादा की यह एक तात्कालिक सफलता है। लेकिन आगे का रास्ता अभी कठिन, उलझा हुआ और बेहद चुनौती भरा है।

लन्दन में रह रहे इस्रायली नागरिकों द्वारा इस्रायली दूतावास को सौंपा गया खुला पत्र

"इस्रायली नागरिक होने के नाते हमसे आज यह कहा गया है कि हम प्रधानमंत्री पद के उन दो दावेदारों के बीच चुनाव करें जिनमें से हरेक शान्ति बहाल करने का दावा कर रहा है। हम इस चुनाव से इनकार करते हैं क्योंकि यह राजनीतिक रूप से ध्यान भटकाने वाला है। मध्यपूर्व का संघर्ष प्राथमिक रूप से शान्ति के बारे में नहीं है। यह निहत्थे फलस्तीनियों पर बर्बर इस्रायली गोलीबारी के बारे में है। यह लगभग समूचे पश्चिमी तट पर किये गये इस्रायली कब्जे के बारे में है। यह उसके द्वारा फलस्तीनी शरणार्थियों के अधिकारों को मान्यता न देने के बारे में है। यह अरब यरूशलम के किसी भी हिस्से पर फलस्तीनी सम्प्रभुता से इस्रायल के इनकार के बारे में है। जब तक ये खौफ जारी रहेंगे, तब तक फलस्तीनियों को यह अधिकार है कि वे उस "शान्ति" जैसे शब्द से इतर किसी चीज के लिए संघर्ष करें जिसके साथ अबतक काफी खिलवाड़ हो चुका है। वे भी "अपने देश में एक स्वतंत्र नागरिक होने" का अधिकार रखते हैं, जो मांग खुद इस्रायल के राष्ट्रगान में उठायी गयी है।

प्रधानमंत्री के रूप में जो भी चुना जाये, हमारी उससे यह मांग है कि अधिकृत क्षेत्रों से इस्रायली सेनाओं और बसाये गये लोगों को अविलम्ब वापस बुलाया जाये। बिना यह महत्वपूर्ण कदम उठाये इस्रायल द्वारा शान्ति के बारे में की जाने वाली सारी बातें बकवास के सिवा कुछ नहीं हैं।

हस्ताक्षर 6 फरवरी, 2001

फलस्तीनी युवाओं के कन्धों पर एक ऐतिहासिक जिम्मेदारी

फलस्तीनी आजादी की मंजिल अभी कितनी दूर है और यह किस शक्ल में मिलेगी, इन सवालों का जवाब तो आने वाला समय खुद देगा, लेकिन एक बात बेहिचक कही जा सकती है कि इन्तिफादा की इसमें सबसे अहम भूमिका होगी। अब तक चले इन्तिफादा ने फलस्तीनी आजादी की राह में रोड़े अटकाने वाली ताकतों के भीतर जो खलबली पैदा की है, वह अभी एक तात्कालिक सफलता ही है। लेकिन अगर सभी रोड़ों को हटाकर मंजिल तक पहुंचना है तो इन्तिफादा न केवल जारी रहना चाहिए बल्कि पिछले अनुभवों से मिले कीमती सबकों की रौशनी में इसे अधिक दूरगामी रणनीति के तहत परिपक्व वैचारिक जमीन पर अधिक व्यापक रूप में संगठित और गोलबन्द करना होगा।

आज कई मायनों में हालत 1993 की तुलना में फलस्तीनी मुक्ति के लिए अनुकूल दिखायी दे रही हैं। सबसे पहली बात तो यह कि इस्रायल शासक वर्ग आज अभूतपूर्व संकटों में उलझा हुआ है। नये प्रधानमंत्री के रूप में एरियल शैरोन का चुनाव इन्तिफादा शुरू होने के बाद आम इस्रायली यहूदी आबादी के बीच उभरी तात्कालिक फलस्तीन विरोधी भावनाओं की एक अभिव्यक्ति है। ओस्लो समझौते के बाद के वर्षों में इस्रायली समाज के भीतर कुछ ऐसे परिवर्तन हुए हैं जो जियनवाद के आधारों को खोखला बनाते जा रहे हैं। तीसरी दुनिया के तमाम देशों की तरह इस्रायली शासकों ने भी अपनी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के संकटों को दूर करने के लिए निजीकरण-उदारीकरण की आत्मघाती राह पकड़ी है। इस राह पर चलने का नतीजा यह हुआ है कि छंटनी-तालाबन्दी-बेकारी ने इस्रायली समाज के भीतर वर्गीय ध्रुवीकरण को तेज कर दिया है। पिछले सात-आठ वर्षों में कारखानों-दफ्तरों के मजदूरों-कर्मचारियों की लम्बी-लम्बी हड़तालें हुई हैं।

एक जैसी मुसीबतों से घिरे लोगों के बीच जिस तरह करीबियां पैदा होती हैं और अपने पुराने मनमुटाव दूर होने लगते हैं, कुछ ऐसा ही इन वर्षों में इस्रायली समाज में घटित होता रहा है। इस्रायल के गैलिली क्षेत्र में रह रही अरब आबादी (जो अधिकांशतः मेहनतकश आबादी है और जिनके सस्ते श्रम के बर्बर शोषण से इस्रायली पूंजीपति वर्ग की समृद्धि की दास्तान लिखी गयी है) और छंटनीशुदा यहूदी बेकार मजदूरों, परेशानहाल मध्यवर्ग के बीच एकता का एक नया आधार पैदा हुआ है, जिसने जियनवाद के सामाजिक आधार में गहरी दरारें पैदा कर दी हैं। यही वजह है कि फलस्तीनी आजादी के सवाल को जल्दी से जल्दी हल करने के पक्ष में इस्रायली जनमत लगातार झुकता गया है। इस्रायली शासकों के लिए यह दबाव बाध्यकारी बनता जा रहा है कि वे फलस्तीनी मसले को हल करें।

इसके साथ ही अरब देशों के साथ पूरी तरह सामान्य रिश्ते कायम न कर पाना भी इस्रायल के आर्थिक संकट को विकट बनाता जा रहा है। इन देशों के साथ जल्द से जल्द व्यापार व अन्य आर्थिक रिश्तों को सामान्य बनाना एक अहम बाध्यकारी कारक बन गया है। जाहिर है फलस्तीनी मसले का हल न हो पाना इसकी सबसे बड़ी बाधा है।

इस्रायली पक्ष की पैरोकारी अमेरिकी साम्राज्यवाद की पश्चिम एशियाई नीति की बुनियाद है, लेकिन यह बुनियाद भी अब उतनी ठोस नहीं रह गयी है। अरब देशों की जनता के दबाव के आगे खाड़ी देशों की अमेरिकापरस्त शेखशाहियां और अन्य बुर्जुआ सत्ताएं भी फलस्तीनी पक्ष के साथ खड़ी होने पर आज मजबूर हैं। फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, जापान और अन्य पश्चिमी देश भी अपने-अपने निहित स्वार्थों के कारण अमेरिका की पश्चिम एशियाई नीति के साथ नहीं खड़े हैं। अमेरिकी-इस्रायली गंठजोड़ का अलगाव कितना अधिक है, इसका अनुमान सिर्फ इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि जब इन्तिफादा शुरू होने के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ के सुरक्षा परिषद में यासिर अराफात ने यह प्रस्ताव पेश किया कि गाजा पट्टी और पश्चिमी तट में शान्ति बहाली के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के अधीन एक सशस्त्र पर्यवेक्षक दल नियुक्त किया जाये तो इस्रायल के विरोध का साथ देने के लिए अमेरिका के अलावा कोई नहीं बचा। सिर्फ रूस और चीन तटस्थ रहे थे। शान्ति प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए वार्ताओं के दायरे को बढ़ाने की अराफात की मांग पर अन्दर ही अन्दर एक सहमति का वातावरण बनता दिख रहा है। खुद भीषण आर्थिक संकटों का शिकार अमेरिका आज अपनी पश्चिम एशिया नीति को उसी रूप में आगे बढ़ाने में असमर्थ दिख रहा है, जिस रूप में सोवियत साम्राज्यवादी खेमे के विघटन के बाद पैदा हुई अनुकूल परिस्थितियों में वह उसे आगे बढ़ाता रहा है।

इस्रायल और उसके सरपरस्त अमेरिका की ये तमाम मजबूरियां फलस्तीनी आजादी के लिए अपेक्षाकृत अनुकूल परिस्थितियां तैयार कर रही हैं। साम्राज्यवादी देशों के भीतर भी जनमत फलस्तीनी आजादी के पक्ष में झुकता हुआ दिख रहा है। अमेरिका में बसे यहूदियों का एक अच्छा-खासा हिस्सा भी इस्रायली शासकों पर फलस्तीनी मसले को हल करने के लिए दबाव बना रहा है। पिछले छह फरवरी

को इस्रायल में प्रधानमंत्री पद के लिए हुए चुनावों के दिन लंदन में बसे यहूदियों ने इस्रायली दूतावास को एक ज्ञापन सौंपा जिसमें इस्रायली सेनाओं द्वारा फलस्तीनी जनता पर चलाये जा रहे दमन-चक्र को अविलम्ब रोकने व फलस्तीन को इस्रायली कब्जे से मुक्त करने की मांग की गयी थी। (देखें बॉक्स)।

दुनिया के स्तर पर उभर रही इन परिस्थितियों के दबाव का ही नतीजा है कि प्रधानमंत्री का चुनाव जीतते ही एरियल शेरोन का स्वर बदल गया है। फलस्तीनी सवाल को हल करने के लिए इस्रायली फौजों को बेलगाम छोड़ देने की मांग उठाने वाला हेकड़ीबाज अचानक शान्ति की भाषा बोलने लगा है और राजनीतिक मतभेदों को भुलाकर एक राष्ट्रीय सरकार बनाने का न्यौता दे रहा है। जाहिर है कि यह शेरोन का हृदयपरिवर्तन नहीं इन्तिफादा और दुनिया के जनगण के दबाव और संकटों से पैदा हुई मजबूरियां हैं।

इन तमाम अनुकूल परिस्थितियों को फलस्तीन की आजादी की हकीकत में तब्दील करना अब सिर्फ इस बात पर निर्भर करता है कि इन्तिफादा जारी रहता है या नहीं। यह इन्तिफादा नेतृत्व के सामने एक चुनौती है कि वह गाजापट्टी और पश्चिमी तट के साथ ही इस्रायल के भीतर और अरब देशों के शरणार्थी शिविरों में रह रही फलस्तीनी आम आबादी को एकसूत्र में पिरोते हुए नये-नये कारगर उपकरणों का आविष्कार कर पाता है या नहीं। इन्तिफादा के जारी रहने के लिए यह भी जरूरी है कि पुराने अनुभवों से सीखते हुए पापुलर कमेटियों का प्रयोग नयी मंजिल में आगे बढ़ता रहे। साथ ही, सबसे अहम बात विचारधारात्मक रूप से परिपक्व होने और इसकी बुनियाद पर क्रान्तिकारी राजनीतिक संगठन के नेतृत्व में समूचे फलस्तीनी मेहनतकश अवाम को संगठित करना। यदि, इस बार यह सम्भव हो सका तो दुनिया के अनुकूल हालात को फलस्तीनी राष्ट्र की हकीकत में और कुछ खोये बिना तब्दील किया जा सकता है। कहने की जरूरत नहीं कि इसका दारोमदार बहादुर फलस्तीनी युवाओं पर अधिक है। इतिहास ने उनके कन्धों पर यह जिम्मेदारी सौंप दी है, जिसे उन्हें पूरा करना ही होगा।

●

बोलते आंकड़े चीरवती सच्चाइयां

➪ भारत का विदेशी व्यापार घाटा पिछले 40 सालों में 2485 करोड़ से बढ़कर 1,19,142 करोड़ रुपये हो गया। विदेशी कर्ज के सूद और किश्तों का भुगतान 296 करोड़ से बढ़कर 5,56, 530 करोड़ रुपये तक पहुंच गया। इस दौरान कुल विदेशी देनदारी 6,75,672 करोड़ रुपये हो गयी। देश पर कुल विदेशी कर्ज 1960-61 में 250 करोड़ था जो 1998-99 के अंत में 9,800 करोड़ रुपये पहुंच चुका है। (स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण के विभिन्न अंकों के आधार पर 'फिलहाल' पत्रिका की गणना)

➪ पिछले दस वर्षों में भारत में कुल 1,02,785 करोड़ रुपये की विदेशी पूंजी आयी जबकि इसी अवधि में मुनाफा, सूद वगैरह के रूप में 1,01,781 करोड़ रुपये यानी आयी हुई विदेशी पूंजी का 99 प्रतिशत बाहर चला गया। (स्रोत : राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी 2000, भारत सरकार)

➪ रोजगार कार्यालय में दर्ज बेरोजगारों की संख्या 4 करोड़ 6 लाख हो गई है।

➪ आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के तहत निजीकरण और विनिवेश की तेज होती प्रक्रिया, छंटनी और तालाबंदी से बड़े पैमाने पर लोगों को रोजगार से हाथ धोना पड़ रहा है और रोजगार के नये अवसर नहीं के बराबर दिखायी दे रहे हैं।

➪ श्रम मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट 1999-2000 के अनुसार पंजीकृत बेरोजगारों की संख्या में हर वर्ष 20 लाख की बढ़ोत्तरी हो रही है।

➪ कुल रोजगार प्राप्त लोगों में से 8 या 9 प्रतिशत संगठित क्षेत्र में हैं और शेष असंगठित क्षेत्र में हैं। संगठित क्षेत्र में रोजगार के अवसर लगातार कम हो रहे हैं।

➪ नेशनल सैंपल सर्वे के ताजा नतीजों के मुताबिक 1999-2000 में ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों के लिए रोजगार के अवसर दो प्रतिशत और महिलाओं के लिए तीन प्रतिशत घट गये। शहरी क्षेत्रों में भी रोजगार के अवसरों में एक प्रतिशत की गिरावट आयी।

➪ यूनिसेफ की रिपोर्ट 'विश्व के बच्चों की स्थिति 1999' के मुताबिक

- 6 से 11 वर्ष आयु वर्ग के करीब 50 फीसदी भारतीय बच्चे स्कूल से बाहर हैं।
- स्कूल जाने वाले बच्चों में से करीब 50 फीसदी बच्चे पांचवीं कक्षा में पहुंचने से पहले ही पढ़ाई छोड़ देते हैं।
- 5 वर्ष की प्राथमिक शिक्षा पूरी करने वाले बच्चों में करीब आधे बच्चे ज्ञान के अनिवार्य न्यूनतम स्तर को भी नहीं प्राप्त कर पाते।
- स्कूल से बाहर निरक्षर बच्चों की सबसे बड़ी संख्या भारत में है।
- भारत में कुल अशिक्षितों में दो-तिहाई महिलाएं हैं।
- दुनिया का हर तीसरा निरक्षर व्यक्ति भारतीय है और भारत ने दुनिया के सबसे बड़े निरक्षर देश के रूप में 21वीं सदी में प्रवेश किया है।

➪ शिक्षा पर होने वाले खर्च का 50 फीसदी उच्च शिक्षण संस्थाओं में पढ़ने वाले महज 10 फीसदी सुविधासम्पन्न लोगों की पढ़ाई-लिखाई पर खर्च हो जाता है। बाकी 30 फीसदी हिस्सा आबादी के शेष 90 फीसदी लोगों को मिलता है।

➪ 7.26 करोड़ बच्चे बेसिक शिक्षा से भी वंचित हैं।

➪ राजधानी दिल्ली में 54 प्राइमरी स्कूलों में पीने के पानी और 83 स्कूलों में बिजली की व्यवस्था नहीं है। 44 स्कूलों में चारदीवारी तक नहीं है।

➪ भारत में पांच वर्ष से कम का हर दूसरा बच्चा कुपोषण का शिकार है।

➪ करीब 20 करोड़ भारतीयों को आज भी सुरक्षित पेयजल नहीं मिलता है और 70 करोड़ लोगों को ढंग का शौचालय नहीं उपलब्ध है।

➪ देश में 40 करोड़ लोग दो वक्त की रोटी से भी वंचित हैं जबकि सरकारी गोदामों में 430 लाख टन अनाज सड़ रहा है।

➪ पूंजीवाद की बुनियाद ही गैर-बराबरी पर टिकी है। इसका एक और प्रमाण यह है कि दुनिया के सबसे अमीर देश अमेरिका में गरीब बच्चों की संख्या 22 प्रतिशत है यानी हर पांचवां बच्चा गरीब है। यूनिसेफ की रिपोर्ट के अनुसार विश्व के 23 धनी देशों के करीब चार करोड़ सात लाख बच्चे गरीबी में रहते हैं।

■ होशियार ! खबरदार !

संस्कृति के दरोगाओं का 'संस्कृति रक्षा' अभियान

कहीं आतंकी छापामारी तो कहीं घर-घर शिक्षा अभियान

मीनाक्षी

भारतीय संस्कृति के दरोगाओं का संस्कृति रक्षा अभियान नये-नये रूपों में जारी है। संस्कृति के महा-अनुष्ठान, प्रचार अभियान, फतवेबाजी के साथ-साथ आतंकी छापामारी की कार्रवाइयां भी जारी हैं।

बीते वेलेंटाइन डे (14 फरवरी) को देश भर में कई जगहों पर शिव सैनिकों ने अपना चिरपरिचित ताण्डव नृत्य किया। फूलों के गुलदस्तों की दुकानों और कार्ड गैलरियों में जमकर तोड़फोड़ व फाड़ाफाड़ी की। मकसद वही पुराना था—भारतीय संस्कृति की रक्षा। संघ परिवार की सभी शाखाओं ने इसका टेंडर जो ले रखा है। वेलेंटाइन डे के विरोध के बारे में उनका कहना था कि यह पाश्चात्य संस्कृति की देन है। सार्वजनिक रूप से प्रेम का प्रदर्शन करना भारतीय संस्कृति नहीं है। उनके अनुसार लड़के-लड़कियों का आपस में खुले प्रेम का इजहार करना समाज को अनैतिकता के गर्त में ले जायेगा। प्रेम करना ही है तो राष्ट्र से करो। आखिर इनके लिए इन्सानों का आपसी प्रेम खतरनाक जो है। इन्हीं तर्कों से शिवसैनिक प्रेम प्रदर्शन की सम्भावना वाले क्षेत्रों में जाकर लड़के-लड़कियों के पीछे लाठी भांजते रहे, दुकानों में तोड़फोड़ करते रहे और ठेठ आतंकवादी संगठनों की तरह इन कार्रवाइयों की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने की घोषणा करते रहे। जाहिर है यह सब संस्कृति के दरोगाओं के हेड क्वार्टर के निर्देश पर ही हुआ होगा। [illegible] पील करते हैं कि वे आप

ओर से

संस्कृति प्रहरियों की यह सबसे ताजा करतूत थी। संघ परिवार का मुख्यालय इस तरह की प्रतिरोधी कार्रवाइयों के अलावा प्रचारात्मक कार्रवाइयों की जबर्दस्त कारगर योजना बनाने और उसे पूरी कामयाबी के साथ अमली जामा पहनाने में उस्ताद है। यह इन योजनाकारों का ही प्रताप था कि चार साल पहले गणेश जी ने छककर दूध पिया था। इन्हीं योजनाकारों की तरकीब से उत्तर प्रदेश में पिछले कई महीनों से **"राष्ट्र जागरण अभियान"** के तहत संघ कार्यकर्ता घर-घर जाकर **'आदर्श हिन्दू घर'** नामक एक पुस्तिका बांट रहे हैं। हिन्दुत्व की इस आचार संहिता में बताया गया है कि हनीमून मनाने से लेकर जन्मदिन पर केक काटने तक जैसी बातें भारतीय संस्कारों के खिलाफ हैं। संघ प्रचारक समझा रहे हैं कि लड़कियां तंग कपड़े न पहनें और किसी भी हालत में सार्वजनिक रूप से प्रेम का इजहार न करें। अकेले प्रदेश की राजधानी लखनऊ में एक हजार से अधिक टोलियां बनायी गयी हैं। बंट रही पुस्तिका में परिवार नियोजन का भी विरोध किया गया है क्योंकि "इससे हिन्दुओं की संख्या में कमी आ रही है।" सांस्कृतिक पुलिस की भूमिका निभाते हुए प्रदेश के मुख्यमंत्री राजनाथ सिंह ने प्रदेश में सौन्दर्य प्रतियोगिताओं पर भी रोक लगा रखी है। उन्होंने कहा कि इससे बहुराष्ट्रीय कम्पनियां मजबूत हो रही हैं।

सवाल चाहे वेलेण्टाइन डे' का हो या सौन्दर्य प्रतियोगिताओं का, यह सही है कि भारतीय समाज के लिए ये कोई स्वस्थ मूल्यों के वाहक नहीं है। स्वस्थ मानवीय प्रेम की अभिव्यक्ति को मान्यता देने वाला एक वातावरण समाज में बने, यह पूरे समाज के जनतांत्रीकरण का सवाल है। लेकिन बाजार की सभ्यता ने प्रेम को उसकी गरिमा से शून्य कर ठेठ बिकाऊ और भोंडी नुमाइश की चीज बनाकर रख दिया है। इसी तरह सौन्दर्य प्रतियोगिताओं से स्त्रियों की स्वतंत्र पहचान, बनती हो और आत्म अभिव्यक्ति का अवसर मिलता हो, ऐसी बात हरगिज नहीं है। इन प्रतियोगिताओं में भाग लेने वाली स्त्रियों की पहचान और अभिव्यक्ति का दायरा बाजार तय करता है और ये स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता और गरिमा को मटियामेट करने वाले होते हैं। लेकिन, भारतीय संस्कृति के चोबदार जिसकी हिफाजत के नाम पर दरोगाई कर रहे हैं वह मध्ययुगीन पितृसत्तात्मक बर्बरता है जो स्त्री को अपनी जायदाद मानती है। जिसने पुरुष स्वामित्ववादी निरंकुश मानसिकता से स्त्री के लिए शील और मर्यादाओं की एक समूची आचार संहिता रची है। आज भूमण्डलीकरण के जमाने में विकृत पूंजीवाद के निरंकुश, स्त्री विरोधी बाजारू मूल्यों और मध्ययुगीन बर्बर मूल्यों का एक सहमेल बना है। इसलिए, स्त्री-सम्मान के प्रति राजनाथ जैसों और संघ परिवार के दरोगाओं की चिन्ताएं ठेठ मर्दवादी चिन्ताएं ही हैं।

संस्कृति के ये दरोगा अपनी सुविधा और जरूरत के अनुसार संस्कृति की लाज बचाने सीन में उतर आते हैं। माइकल जैक्सन को बम्बई बुलाकर नचाने में बाल ठाकरे को अपसंस्कृति नहीं दिखायी देती। लेकिन, वेलेंटाइन डे से खतरा महसूस होने लगता है। दर्जनों निजी देशी-विदेशी चैनलों के जरिये दिन-रात जब बीमार-विकृत संस्कृति परोसी जाती हो तो संघ परिवार को कोई असुविधा नहीं होती, लेकिन तमाशा खड़ा करने के लिए अश्लील फिल्मों के पोस्टरों पर कालिख पोतेंगे, सौन्दर्य प्रतियोगिताओं पर हल्ला बोलेंगे। लड़कियों के जींस पहनने पर रोक लगायेंगे।

स्त्रियों के बारे में खुद राजनाथ सिंह का नजरिया कैसा है यह उनके इस बयान से साफ हो जायेगा। पत्रकारों ने जब उनसे पूछा कि क्या वे सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में जज बनने वाले मंत्रियों-विधायकों पर भी प्रतिबन्ध लगायेंगे तो वह बोले "लोग तो आंखों की प्यास बुझाने के लिए क्या-क्या नहीं करते?" मुख्यमंत्री महोदय की भाषा काबिले गौर है। स्त्री की सुरक्षा एवं सम्मान का ढिंढोरा पीटने वाले राजनाथ सिंह की पार्टी में कई विधायकों पर छेड़छाड़ के आरोप लगे हुए हैं।

स्त्री के प्रति "राष्ट्रवादियों" का नजरिया मध्ययुगीन बर्बरता से आगे नहीं बढ़ पाया है। यह बार-बार साबित होता है। दिवंगत विजय राजे सिंधिया ने 1987 में सती को महिमामण्डित किया था। बाल ठाकरे गांधीवादी नेता उषा बेन मेहता और मृणाल गोरे के लिए फूहड़ भाषा का इस्तेमाल कर चुके हैं। पिछले ही वर्ष चुनाव के दौरान भाजपा और उसके सहयोगी दलों ने प्रतिद्वंद्वी महिला उम्मीदवारों के घटिया भाषा के इस्तेमाल की

(शेष पृष्ठ 27 पर)

उत्तर प्रदेश :

"रामराज्य" में पुलिस हत्यारी और थाने वधस्थल बन चुके हैं

सुनील चौधरी

भाजपाई "रामराज्य" में उत्तर प्रदेश की पुलिस जितनी भयमुक्त हुई है उतनी पहले कभी नहीं थी। फर्जी मुठभेड़ें, हिरासत में मौतें, थानों में बलात्कार, जनान्दोलनों पर लाठियां-गोलियां तो 1947 के बाद बनी सभी सरकारों के राजकाज में चलती रही हैं, लेकिन भाजपाई राज में सारे रिकार्ड पीछे छूटते जा रहे हैं। सबसे ताजा 'रिपोर्टेड' घटना गोरखपुर जिले में पिछली एक फरवरी को घटी। बेकसूर और बिना किसी आपराधिक रिकार्ड वाले 24 वर्षीय राजेश शर्मा पर शाहपुर थाने की पुलिस ने 'थर्ड डिग्री' का बेमिसाल कमाल दिखाते हुए मार डाला। राजेश शर्मा की थाने में बर्बर पिटाई की गयी। कपड़े उतारकर बिजली के झटके दिये गये। यहां तक कि थानेदार संजय सिंह ने उसके मुंह पर पेशाब किया। हत्या करने के बाद पुलिस ने उसका अन्तिम संस्कार भी कर दिया।

पांच दिन तक हत्यारा थानेदार खुलेआम घूमता रहा, थाने की जी डी में हेराफेरी करता रहा, लेकिन उसके खिलाफ थाने में रिपोर्ट तक नहीं दर्ज की गयी। कारण कि उस "पराक्रमी" थानेदार की सत्ताधारी पार्टी में अच्छी पैठ थी। उसके शुभचिन्तक उसे बचाने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक करते रहे।

लेकिन, आखिरकार जब महानगर की जनता का आक्रोश सड़कों पर फूट पड़ा तो मजबूर प्रशासन को एफ.आई.आर. लिखने और थानेदार सहित उसके तीन सहयोगियों पर हत्या का मुकदमा कायम करने पर बाध्य होना पड़ा।

इस जघन्य घटना पर गोरखपुर की आम जनता का आक्रोश इतना जबर्दस्त था कि 7 फरवरी को मुख्यमंत्री राजनाथ सिंह के गोरखपुर आगमन पर ऐतिहासिक बन्दी हुई और समूचा महानगर विरोधस्वरूप सड़कों पर निकल आया। घटना के विरोध में विपक्षी चुनावी पार्टियों द्वारा बन्द का आह्वान जरूर किा गया था, लेकिन बन्दी की सफलता जबर्दस्त जनाक्रोश का नतीजा थी। जगह-जगह विरोध सभाएं हुईं। जुलूस निकले। महानगर में सक्रिय छात्रों के क्रान्तिकारी संगठन दिशा छात्र संगठन के कार्यकर्ताओं ने भी जुलूस निकालकर विरोध प्रकट किया और हत्यारों को गिरफ्तार कर घटना की न्यायिक जांच की मांग की।

राजेश शर्मा हत्याकांड के विरोध में गोरखपुर बंद के दौरान जुलूस निकालते हुए दिशा छात्र संगठन के कार्यकर्ता

घटना के दस दिन बाद पुलिस फरार थानेदार को प्रतापगढ़ जिले में गिरफ्तार कर सकी। शेष अभियुक्तों पर टिप्पणी लिखे जाने तक पुलिस हाथ नहीं डाल सकी थी।

इस घटना के सिर्फ तीन दिन बाद उन्नाव के सफीपुर कस्बे में पुलिस ने ग्यारह माह की रेखा को पैरों से रौंदकर मार डाला। यही नहीं, पुलिस ने रेखा की मां के साथ भी घर में घुसकर बदसुलूकी की और पिता को गिरफ्तार कर ले गयी। पुलिस ने किसी निजी खुन्नस के चलते यह किया। इससे पहले लखनऊ पुलिस की एक और कारस्तानी भी खबरों में आ चुकी थी। विश्वविद्यालय की एक छात्रा अनीता पाण्डेय को इसलिए वाहन चोर बताकर लाकअप में डाल दिया गया क्योंकि उसने पुलिस को पांच सौ रुपये नहीं दिये थे। थाने में उसकी पिटाई भी की गयी थी। बाद में अदालत ने अनीता को निर्दोष करार दे दिया।

इस घटना के एक हफ्ते के भीतर ही राजधानी लखनऊ की ही ठाकुरगंज पुलिस ने एक गर्भवती महिला को इतना मारा कि बच्चा पेट में ही मर गया। पुलिस को इस गर्भवती महिला के भाई की तलाश थी। पुलिस ही नहीं समूचे प्रशासनिक अमले के भीतर जैसे पुलिसिया आत्माएं प्रवेश कर गयी हैं। फैजाबाद जिले के एक राजस्व अधिकारी ने सोहावल तहसील के शिवप्रसाद वर्मा को पकड़ा और लाकर में डालकर जला दिया। वर्मा गम्भीर रूप से घायल हुए। पुलिसिया वहशीपन की एक और घटना ने पिछले दिनों हिलाकर रख दिया था। चर्चित ब्रह्मदत्त द्विवेदी हत्याकांड के मुख्य अभियुक्त की शहर पर पुलिस ने एक विवाहिता के साथ थाने में लगातार तीन दिन तक बलात्कार करने के बाद उसकी हत्या कर दी। बाद में महिला के पति ने भी अपमान, बेबसी और सदमे की हालत में आत्महत्या कर ली थी।

बीते साल में उत्तर प्रदेश में कुल 200 से अधिक मौतें हिरासत में हो चुकी हैं। कुछ गैर सरकारी रिपोर्टों में यह संख्या 350 से भी ज्यादा बतायी गयी है, 200 तो सिर्फ 'रिपोर्टेड' मौतें हैं। उत्तर प्रदेश पुलिस के कामकाज का आलम यह है कि बीते साल में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने 50 हजार से ज्यादा मामले दर्ज किये हैं।

उत्तर प्रदेश पुलिस के कामकाज का यह रिकार्ड चीख-चीख कर कह रहा है कि भाजपायी "रामराज" में अंधेरा कायम है।■

उन्हें डर है कि वे इतिहास की विषयवस्तु न बन जायें

कृष्णगोविन्द सिंह

संघ परिवार ने शिक्षा सहित समूचे सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने को भगवा रंग में रंग देने के किसी भी अवसर को हाथ से नहीं निकलने दिया। ऐसा ही एक बड़ा अवसर 1977 में आया था, जब इमर्जेन्सी के अत्याचारों से त्रस्त जनता ने प्रबल बहुमत के जरिये जनता पार्टी को सरकार में बैठाया। भाजपा का पुराना रूप जनसंघ जनता पार्टी का एक महत्वपूर्ण घटक था। एक योजना के तहत संघी "थिंक टैंकों" ने तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई को एक "इतिहास विद्वान" की ओर से पत्र भिजवाया। पत्र में एन.सी.ई.आर.टी. के इतिहास पाठ्यक्रम पर भारी असन्तोष जाहिर करते हुए मार्क्सवादी इतिहासकारों को पानी पी-पीकर कोसा गया था। बिचारे मोरारजी देसाई सत्ता में बने रहने की मजबूरी के शिकार थे। पत्र में दिये गये मूर्खतापूर्ण एवं प्रतिक्रियावादी सुझावों को कूड़ेदान के हवाले करने के बजाय रामशरण शर्मा, विपिन चन्द्रा और रोमिला थापर जैसे विश्व प्रसिद्ध इतिहासकारों की पाठ्यपुस्तकों को हटा दिया गया। लेकिन उस समय यह अभियान बहुत दूर तक नहीं पहुंच सका क्योंकि घटक दलों की कुत्ताघसीटी के चलते जनता पार्टी की सरकार ढाई साल में ही गिर गयी।

लेकिन 1998 में जब भाजपा के नेतृत्व में केन्द्र में गठबन्धन सरकार बनी तो नये सिरे से यह मुहिम शुरू हुई। इस बार पूरी ताकत के साथ। तमाम शैक्षणिक एवं अकादमिक संस्थानों में चुन-चुनकर केसरिया ब्रिगेड के "बौद्धिकों" को भरा जा चुका है। इनकी मदद से सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी के तमाम पाठ्यक्रमों को नीचे से लेकर ऊपर तक केसरिया रंग दिया जा रहा है। भाजपा शासित राज्यों में यह मुहिम काफी जोर पकड़ चुकी है।

भाजपा शासित राज्यों में चल रही मुहिम का पर्दाफाश छह-सात वर्षों पूर्व स्वयं एन.सी.ई.आर.टी. ने ही किया था जो आज स्वयं स्कूली शिक्षा के भगवाकरण का औजार बन चुकी है। पी.वी.नरसिंह राव के शासन के दौरान एन.सी.ई.आर.टी. ने दो चरणों में देश भर के राज्यों में लगी पाठ्य-पुस्तकों का मूल्यांकन करवाया था। जनवरी 1993 और अक्टूबर 1994 में पेश रिपोर्टों में कहा गया था कि भाजपा शासित राज्यों में लगी पाठ्य पुस्तकों के जरिये घोर साम्प्रदायिक विचारों को फैलाया जा रहा है। मध्यकालीन भारत को पूरी तरह से हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की दुश्मनी के रूप में दिखाया गया है। आधुनिक भारतीय इतिहास खण्ड में स्वाधीनता संग्राम को 20 पृष्ठों में ही निपटा दिया गया है। इसमें भी तीन पृष्ठ हेडगेवार के "महान योगदानों" पर ही खर्च हो जाते हैं। रिपोर्ट में मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा आवश्यक कदम उठाने की सिफारिश की गयी थी। जाहिर है एन.सी.ई.आर.टी. ने यह उपक्रम कांग्रेसी राजनीति के तकाजों को पूरा करने के लिए ही किया था। ठीक उसी तरह, जिस तरह आज यह भाजपाई राजनीति के तकाजों को पूरा कर रही है।

संघ परिवार का सर्वाधिक कोपभाजन इतिहास को ही बनना पड़ रहा है। यह भी अनायास नहीं है। दरअसल, वह इतिहास के महत्व को अच्छी तरह समझता है। उसे यह पता है कि यदि नयी पीढ़ी को वैज्ञानिक इतिहास दृष्टि से और फासिस्ट जमातों के काले इतिहास से परिचित कराया जायेगा तो एक दिन वे सिर्फ इतिहास की विषयवस्तु बन जायेंगे। यही डर उन्हें इतिहास पर टूट पड़ने के लिए बाध्य कर रहा है। ●

(पृष्ठ 25 का शेष)

झड़ी लगा दी थी। प्रमोद महाजन ने जयललिता की तुलना **'इतिहास में वर्णित विषकन्याओं'** और सोनिया गांधी की तुलना मोनिका लेविंस्की से की थी। मुरली मनोहर जोशी ने सोनिया गांधी को **सूपर्णखा** कहा था। जार्ज फर्नांडीज ने भी सोनिया गांधी के लिए अशोभनीय भाषा का इस्तेमाल किया था। करुणानिधि ने जयललिता को **"झगड़ालू औरत"** कहा तो शरद यादव ने सक्रिय महिलाओं को **"परकटी"** कहा था।

इतना तो तय है कि संस्कृति के दरोगाओं को स्त्री के सम्मान की चिन्ता बिल्कुल नहीं है। लेकिन यह बात भी उतनी ही सही है कि बाजार आजादी के जो मूल्य परोस रहा है, वे स्त्री की गरिमा को बहाल करने वाले नहीं हैं। यह आजादी नहीं, एक कारागार से दूसरे कारागार में कैद करना है। इस सच्चाई की समझ से ही स्त्री की वास्तविक मुकम्मल पहचान कायम करने और मानवीय गरिमा बहाल करने के रास्ते खुलेंगे। ●

WORK HARD

GET ECLAT

EDUCATION POINT

centre for higher and competitive education

Education Point is organising screening test for pre Engineering and pre Medical on the same pattern of FIITJEE

Scholarship to Top 25 Students in Each Batch

Application forms available from Ist week of March

FOR MORE DETAILS CONTACT :

IIIrd floor, Nirman Ambica Arcade, opp. Gomti Motors, I.T. Crossing, Lucknow

Mob. 98380 42775 E-mail : v_42775@usa.net

लीनस पॉलिंग : जनता को समर्पित एक महान वैज्ञानिक

वैज्ञानिकों के बारे में यह आम धारणा प्रचलित है कि वे आम जनजीवन से कटे हुए, तमाम सामाजिक-राजनीतिक सरगर्मियों से अलग-थलग रहकर और प्रयोगशालाओं में "कैद" रहते हुए प्रकृति के रहस्यों को सुलझाने के लिए शोध-अनुसंधान में डूबे रहते हैं। अधिकांश वैज्ञानिक खुद भी अपनी भूमिका को इसी दायरे में स्वीकार कर अपने ढंग से एक सार्थक-रचनात्मक जीवन जीने का भ्रम पाले हुए सन्तुष्ट रहते हैं। लेकिन जब तक हम एक विषमतामूलक समाज के अंग हैं तब तक न तो विज्ञान समाज-व्यवस्था ओर शासक वर्ग के निहित स्वार्थों से मुक्त हो सकता है और न ही वैज्ञानिक का जीवन। विज्ञान और समाज के अन्तरविरोधों या दूसरे शब्दों में कहें तो शासक वर्गों के पूर्वाग्रहों-निहित स्वार्थों और वैज्ञानिकों के जीवन-आदर्शों की टकराहटों का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना स्वयं विज्ञान का इतिहास। बीसवीं शताब्दी के महान वैज्ञानिकों में से एक लीनस पॉलिंग का समूचा जीवन और उनका कर्म विज्ञान और समाज के इसी अन्तरविरोध की एक कहानी है। 19 अगस्त 1994 को 93 वर्ष की आयु में उनका निधन हुआ था। एक महान रसायनशास्त्री के रूप में और विटामिन चिकित्सा के जनक एवं उत्साही प्रचारक के रूप में तो शायद बहुतेरे पढ़े लिखे लोग लीनस पॉलिंग के नाम से परिचित हों। लेकिन जीवन मूल्यों-आदर्शों और जनता के पक्ष की खुली हिमायत करने वाले एक सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में अमेरिका के बाहर वे ज्यादातर अनजान ही रहे हैं। उनका समूचा जीवन—एक वैज्ञानिक के रूप में और एक सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में—विज्ञान और वैज्ञानिकों के बारे में आमतौर पर प्रचलित रूढ़ियों-विश्वासों के प्रति विद्रोह का एक प्रकाशस्तम्भ है, जो हमेशा आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित और ऊर्जस्वित करता रहेगा। लीनस पॉलिंग की महान जीवनयात्रा की एक झलक 'आह्वान' के पाठकों के लिए यहां प्रस्तुत है। - सम्पादक

खालिद

सात दशकों तक एक वैज्ञानिक के रूप में प्रकृति और उसकी निराली सन्तान—मनुष्य—के जीवन के रहस्यों से जूझते हुए और चालीस वर्षों तक एक सामाजिक- राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में मुनाफे और बाजार आधारित निहित स्वार्थों से जूझते हुए लीनस पॉलिंग ने दुनिया भर की जनता के बीच वह सम्मान और प्यार हासिल किया जो विरले ही हासिल होता है। वैज्ञानिकों की मंडलियों में आदरणीय और प्रिय होना उनके जैसी प्रतिभा के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं। लेकिन, नाभिकीय युद्धों और पर्यावरणीय विनाश विरोधी आन्दोलनकारियों के बीच, स्वास्थ्य और चिकित्सा कार्यकर्ताओं के बीच और उनकी वैज्ञानिक देनों से लाभान्वित अनगिन लोगों के बीच समान आदरभाव और प्रेम अर्जित करना लीनस पॉलिंग के असाधारण, बहुआयामी व्यक्तित्व की विशेषता थी। यह इसलिए सम्भव हुआ क्योंकि वे जनता के पक्ष में न केवल सोचते थे बल्कि इसकी खुली हिमायत करने के लिए हर जोखिम का सामना करने के लिए हमेशा तत्पर रहते थे।

यदि हम लीनस पॉलिंग को मिले वैज्ञानिक और लोकोपकारी पुरस्कारों की सूची बनायें तो कई पन्ने भर जायेंगे। अब की सबसे ज्यादा चर्चित इतिहास की वैज्ञानिक पाठ्यपुस्तक और 600 से अधिक वैज्ञानिक शोधपत्रों के लेखक पॉलिंग मौजूदा पूंजीवादी युग में विशेषज्ञों के विशेषज्ञ थे—एक ऐसे युग में जब विज्ञान और वैज्ञानिक प्रयोग पूरी तरह से विशेषज्ञों की गिरफ्त में हैं।

पॉलिंग उन लोगों में से नहीं थे जो समाज में प्रतिष्ठापूर्ण हैसियत अर्जित कर लेने के बाद अपने-अपने आदर्शों और मूल्यों से विचलित हो जाते हैं। वे अपनी प्रतिष्ठा को दांव पर लगाने में कभी पल भर भी नहीं हिचके। अपने इसी विद्रोही रवैये से वह अक्सर राजनीतिक और वैज्ञानिक विवादों में घिरे रहे। समाज के मठों और गढ़ों से उनपर निरन्तर तरह-तरह के हमले किये जाते रहे। उनका यह कहकर उपहास उड़ाया गया कि वह "हद से आगे जा रहे हैं" और "अपनी विशेषज्ञता के क्षेत्र का उल्लंघन" कर रहे हैं। लेकिन वह घिसे-पिटे, प्रतिक्रियावादी विचारों और संस्थाओं की हदों का अक्सर उल्लंघन करते रहे। उनकी यही तो विशिष्टता थी, जो तमाम रूढ़िपूजक वैज्ञानिकों के बीच उन्हें अनन्य बनाती है और हम जब भी लीनस पॉलिंग को याद करेंगे तो सबसे अधिक इसी चीज के लिए।

विज्ञान के क्षेत्र में नई राहों के अन्वेषक

विज्ञान के क्षेत्र में लीनस पॉलिंग की सक्रियता एक ऐसे वैज्ञानिक की सक्रियता थी जो बनी-बनायी लीकों पर चलने को वैज्ञानिक पोंगापन्थ मानता था। किशोरावस्था में ही पॉलिंग ने रसायनशास्त्र की प्रयोगशाला में प्रयोगों की शुरुआत कर दी थी। 1920 और 1930 के दशक में वह युवा वैज्ञानिकों की उस टोली के अंग बन गये जो भौतिकी की एक नयी शाखा "क्वाण्टम मैकेनिक्स" का विकास कर रही थी। उन्होंने रासायनिक द्रव्यों के अपने ज्ञान को क्वाण्टम मैकेनिक्स के साथ जोड़कर इस बारे में नयी खोजें कीं कि विभिन्न रसायनों के अणुओं की रचना के लिए परमाणु आपस में किस तरह जुड़ते हैं। अपने सहयोगियों के साथ मिलकर उन्होंने क्रिस्टलों, खनिजों एवं अन्य द्रव्यों को विश्लेषित करने के लिए नयी प्रयोगात्मक प्रविधियां विकसित कीं। इसके साथ ही उन्होंने रासायनिक बन्धों (chemical bonds) को भी समझने के लिए नयी प्रयोगात्मक प्रविधियों का विकास किया।

पॉलिंग की अनुसन्धान टोली के कामों ने यह समझना सम्भव बनाया कि अणुओं को एक दूसरे से अलग कैसे किया जाये और फिर से उन्हें नये रूप में व्यवस्थित कैसे किया जाये। इसने रसायनशास्त्र, आणविक जीवविज्ञान (molecular biology), आनुवंशिकी, औषधि विज्ञान और अन्य वैज्ञानिक क्षेत्रों में एक नयी क्रान्ति को जन्म दिया, क्योंकि अब अनेक प्रकार के रसायनों को तैयार करना सम्भव हो गया

था। पॉलिंग की प्रसिद्ध पुस्तक 'रासायनिक बन्धों की प्रकृति' (The Nature of Chemical Bonds) 1939 में छपकर आ चुकी थी।

1940 के दशक के आरम्भ में पॉलिंग ने अपना ध्यान जीववैज्ञानिक और चिकित्सा क्षेत्र की समस्याओं पर अधिकाधिक केन्द्रित किया। उन्होंने अपनी अनुसन्धान टोली के साथ सजीव वस्तुओं अर्थात जैविक अणुओं के अन्दर पाये जाने वाले कार्बन-आधारित द्रव्यों का विश्लेषण किया। हीमोग्लोबिन जो खून में आक्सीजन वहन करने वाला घटक है, ऐसा ही एक द्रव्य है। पॉलिंग इस खोज की दिशा में अपने मानवीय सरोकारों से प्रेरित हुए। दरअसल, वह अमेरिका के भीतर रहने वाले काले लोगों की खातिर कुछ सार्थक काम करना चाहते थे। इसलिए, उन्होंने sickel cell anaemia (एक प्रकार की खून की कमी सम्बन्धी रोग) के अध्ययन पर अपना विशेष ध्यान केन्द्रित किया। यह पश्चिमी अफ्रीकी मूल के काले लोगों में एक आनुवंशिक बीमारी के रूप में बहुतायत में पाया जाता है जो हीमोग्लोबिन में एक तरह की असामान्यतया से पाया जाता है। पॉलिंग के रासायनिक शोध ने इस बीमारी के इलाज का एक ज्यादा कारगर तरीका ढूंढ़ निकालने में मदद की।

पॉलिंग ने 'एण्टी-बॉडीज' और 'एनिस्थीसिया' (anti-bodies and anaesthesia) के बारे में भी नये सिद्धान्त विकसित किये। इसके अतिरिक्त उन्होंने डी.एन.ए. की संरचना को समझने में भी उल्लेखनीय योगदान किया।

लीनस पॉलिंग की वैज्ञानिक उपलब्धियों को मान्यता प्रदान करते हुए उन्हें 1954 में रसायन शास्त्र के लिए नोबेल पुरस्कार के लिए चुना गया। लेकिन, यह कुख्यात मेकार्थी काल था और पॉलिंग इस दौर की अमेरिकी सरकार की नीतियों के मुखर विरोधी के रूप में सामने आ चुके थे। असन्तुष्टों को तरह-तरह से उत्पीड़ित करने की कार्रवाइयों के शिकार पॉलिंग भी हुए। वे नोबेल पुरस्कार लेने यूरोप नहीं जा सके।

प्रयोगशाला से बाहर—युद्धविरोधी सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में सड़कों पर जनता के साथ

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान लीनस पॉलिंग ने अमेरिकी सरकार के सैन्य अनुसन्धान कार्यों में देश के तमाम वैज्ञानिकों की तरह शिरकत की, हालांकि वे परमाणु बम परियोजना के साथ प्रत्यक्ष रूप से नहीं जुड़े थे। अपने तमाम समकालीन प्रयोगशील वैज्ञानिकों की तरह उन्होंने ने भी विश्व युद्ध के दौरान अमेरिकी युद्ध मशीनरी के लिए अपने कार्य को इस आधार पर न्यायसंगत ठहराया कि जर्मन युद्ध मशीनरी मानवता के लिए ज्यादा बड़ा खतरा है।

लेकिन विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद युद्ध विजेता के रूप में उभरा अमेरिकी साम्राज्यवाद मगरूर होकर जब अपनी परमाणु क्षमता का इस्तेमाल दुनिया पर धौंसपट्टी जमाने लगा तो पॉलिंग बेहद उद्विग्न हो उठे। कई अन्य प्रमुख अमेरिकी वैज्ञानिकों के साथ वह भी यह महसूस कर गहरी वेदना से भर उठे कि उन्होंने भीषण संहारक हथियार बनाने में मदद पहुंचायी है। एक प्रतिबद्ध राजनीतिक कार्यकर्ता और अपनी पत्नी ऐवा हेलेन मिलर से प्रभावित होकर पॉलिंग सक्रिय राजनीतिक जीवन में खिंच आये।

पॉलिंग ने वैज्ञानिक बिरादरी की प्रगतिशील हस्तियों, अल्बर्ट आइन्सटाइन और बैरी कॉमनर जैसे लोगों के साथ मिलकर नाभिकीय युद्ध के खतरों के प्रति दुनिया को आगाह किया। उन्होंने परमाणु बमों से होने वाले सामाजिक, स्वास्थ्य एवं पर्यावरण सम्बन्धी विनाशों के बारे में सूचनाएं एकत्र करने में मदद की। पॉलिंग ने उन लोगों के साथ मिलकर, जो परमाणु हथियारों के परीक्षण, विकास और उपयोग का विरोध करने वाले लोगों के साथ मिलकर एक अन्तरराष्ट्रीय आन्दोलन का निर्माण करने में सक्रिय सहयोग दिया।

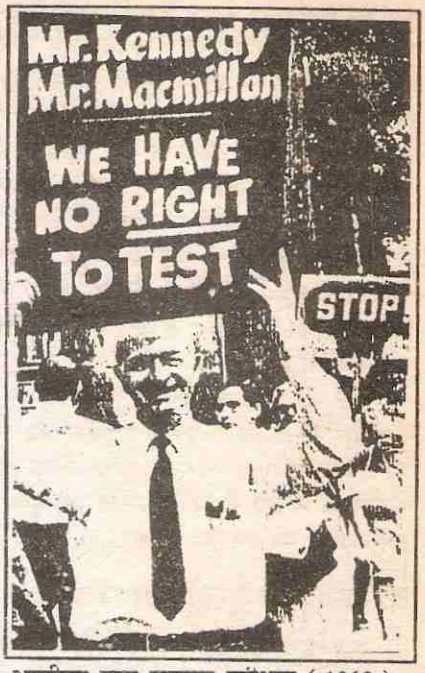

अमरीका द्वारा परमाणु परीक्षण (1962) के विरोध में व्हाइट हाउस के निकट एक प्रदर्शन में भाग लेते लीनस पॉलिंग

उन्होंने मैकार्थीकाल के सोवियत विरोधी अभियान में शामिल होने से साफ इन्कार कर दिया।

अमेरिकी अधिकारियों को पॉलिंग का यह रुख और तमाम सामाजिक सक्रियताएं आंखों में चुभने लगीं। पॉलिंग पर अधिकारियों ने कम्युनिस्टों का हमदर्द होने का आरोप लगाकर उनकी आवाज को दबाने की तरह-तरह से कोशिशें कीं। सरकारी खुफिया अधिकारियों ने उनसे परमाणु बम विरोधी अभियान में शामिल अन्य संगठनकर्ताओं के नाम बताने के लिए दबाव दिया। लेकिन उन्होंने यह कहकर साफ नकार दिया कि **"मेरी अन्तरात्मा यह गवारा नहीं करती कि खुद को बचाने की खातिर मैं इन आदर्शवादी युवाओं को कुर्बान कर दूं। मैं हरगिज ऐसा नहीं करूंगा।"**

अमेरिकी अखबारों ने पॉलिंग की परमाणु बम विरोधी सरगर्मियों पर यह कहकर प्रहार किया कि उन्हें दूसरे मामलों के बारे में, खासकर राजनीति के मसलों पर, अपनी जुबान बन्द ही रखनी चाहिए। कुछ वर्षों बाद उन्होंने एक बार बताया कि इस तरह के हमलों के बारे में वे किस तरह महसूस करते थे : **"मैंने हमेशा यह माना है कि वैज्ञानिकों को अव्वल तो एक आम नागरिकों की जिम्मेदारियां निभानी चाहिए, लेकिन इसके साथ ही उनकी विज्ञान की समझदारी होने के कारण और खासकर समाज की उन समस्याओं की समझदारी होने के नाते जहां विज्ञान का करीबी रिश्ता होता है, अतिरिक्त जिम्मेदारियां होती हैं। साल-दर-साल मुझे यह बताया जाता रहा कि हो सकता है कि मैं रसायनशास्त्र के बारे में बहुत कुछ जानता होऊं लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि मैं विश्व राजनीति या आर्थिक या सामाजिक मसलों के बारे में भी जानता हूं, इसलिए बेहतर यही है कि मैं अपनी जबान बन्द रखूं। मैंने अक्सर इसका यह कहकर उत्तर दिया है कि अव्वलन तो मैं आपकी सलाह लेने से इनकार करता हूं और दूसरे यह कहकर कि बहुतेरे दूसरे ऐसे लोग—वकील, राजनीतिज्ञ आदि हैं जो इन मामलों के बारे में उतने ही अज्ञानी है जितना मैं, लेकिन फिर भी कोई उनसे यह नहीं कहता कि वे अपनी जबान बन्द रखें।"**

लेकिन 1956 में निकिता ख्रुश्चोव के नेतृत्व में सोवियत संघ में

पूंजीवाद पथगामियों ने जब सत्ता पर कब्जा कर लिया और समाजवाद को उखाड़ फेंका तो आगे चलकर इन तत्वों के साथ अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने नये प्रतिक्रियावादी समझौते की दिशा में कदम बढ़ाये। नये सोवियत शासक "शान्ति" के नाम पर दुनिया की जनता को क्रान्तिकारी संघर्षों से विरत रहने की नसीहतें देने लगे। दोनों देशों के आपसी रिश्तों में आये इस बदलाव का असर लीनस पॉलिंग और अमेरिकी सत्ता के रिश्तों पर दिलचस्प ढंग से पड़ा। इस शान्तिकाल में अमेरिकी शासकों ने खुले नाभिकीय परीक्षण बन्द कर दिये। इस परिदृश्य में लीनस पॉलिंग को एक बार फिर नोबेल पुरस्कार से नवाजा गया—इस बार "शान्ति" के लिए—उनके नाभिकीय हथियार विरोधी सरगर्मियों के लिए।

साठ के दशक के उत्तरार्द्ध में दुनिया भर में चल रहे जनसंघर्षों ने लीनस पॉलिंग को अत्यधिक प्रभावित और उनके राजनीतिक विचारों का झुकाव वामपन्थ की ओर अधिकाधिक होता गया। उन्होंने अपने राजनीतिक विचारों से अनेक उभरते हुए युवा अनुसन्धानकर्ताओं और कार्यकर्ताओं को प्रभावित किया।

दो तरह के युद्धों का फर्क

ऐवा मिलर के साथ मिलकर उन्होंने वियतनाम युद्ध विरोधी सरगर्मियों में भी हिस्सा लिया। उन्होंने पूंजीवाद का खुलकर विरोध किया और समाजवाद की हिमायत की। लेकिन पॉलिंग अनेक युद्धविरोधी कार्यकर्ताओं की तरह शान्तिवादी विचारों के नहीं थे जो साम्राज्यवादी युद्धों और मुक्तियुद्धों को एक ही पलड़े पर रखते थे। पॉलिंग इन दो तरह के युद्धों के बीच फर्क करते थे। **नब्बे साल पूरे होने पर उनको बधाई देने वाले मित्रों में से किसी ने पूछा कि क्या किन्हीं भी परिस्थिति में हिंसा जायज है? पॉलिंग का जवाब था कि ऐसी परिस्थितियां हो सकती है जब उत्पीड़न को समाप्त करने के लिए हिंसा का सहारा लेना पड़े।**

अमेरिका की डेमोक्रेटिक और रिपब्लिकन पार्टियों के बारे में 1968 में की गयी उनकी एक टिप्पणी से उनके राजनीतिक विचारों की एक स्पष्ट झलक मिलती है। **"मैं इस पर विश्वास नहीं करता कि दलगत राजनीति, यदि इसमें बदलाव आता है तो भी... उस शैतानी तंत्र को समाप्त कर सकती है, जिसकी यह खुद एक अंग है। ... मैं अहिंसा में विश्वास करता हूं। लेकिन समस्या यह है कि हमारी सत्ता हिंसा में, बल प्रयोग में, नापाम बमों में, पुलिसिया ताकत में, हवाई बमबारी में, बी-52 और बी-58 जैसे युद्धक विमानों में, नाभिकीय हथियारों में और युद्धों में विश्वास करती है। जब तक यह सत्ता-प्रतिष्ठान निर्धारक कारक बना रहेगा हमारी इस उम्मीद का वास्तविकता में कोई आधार मौजूद नहीं है कि आने वाली क्रान्ति अहिंसक होगी।"**

चिकित्सा के क्षेत्र में प्रचलित रूढ़ियों के भंजक के रूप में

पूंजीवाद के अन्तर्गत मुनाफे के लिए दवाओं का व्यापार किया जाता है। दवाओं को बनाने, सर्जरी व अन्य उच्च तकनीक आधारित विशेषज्ञतामूलक खर्चीली पद्धतियों द्वारा अरबों रुपये कमाये जाते हैं। स्वास्थ्य और चिकित्सा विश्वव्यापी नेटवर्क से जुड़े निहित स्वार्थ इसीलिए किसी भी ऐसे नये आविष्कार के खिलाफ अपनी पूरी ताकत के साथ आ खड़े होते हैं। लीनस पॉलिंग ने जब स्वास्थ्य और चिकित्सा क्षेत्र की प्रचलित रूढ़ियों के खिलाफ जाकर विभिन्न रोगों की रोकथाम और इलाज की एक सस्ती एवं मानव शरीर के लिए ज्यादा अनुकूल वैज्ञानिक पद्धति के रूप में विटामिन थिरेपी का आविष्कार किया तो तमाम निहित स्वार्थी शक्तियों का उनके खिलाफ पिल पड़ना स्वाभाविक था।

साठ के दशक के उत्तरार्द्ध के भीषण राजनीतिक संघर्षों के दौर में, इन संघर्षों से पूरी तरह संपृक्त रहते हुए, पॉलिंग विटामिन थिरेपी के बिलकुल नये क्षेत्र में काम करना शुरू किया। उनके लिए यह वैज्ञानिक विवादों का और जनता के लिए संघर्ष का एक नया क्षेत्र भी साबित हुआ। पॉलिंग ने उन औषधियों में दिलचस्पी दिखायी जो शरीर में प्राकृतिक रूप से मौजूद द्रव्यों का उपयोग कर स्वस्थ बनाते हैं और बीमारियों का इलाज करते हैं। उनका विश्वास था कि विटामिन जैसे प्राकृतक रसायन के जरिये मानव शरीर की रोगों पर स्वयं काबू पानी की प्रतिरोध क्षमता को काफी हदों तक बढ़ाया जा सकता है।

अपने इसी विश्वास के आधार पर उन्होंने **मेगाविटामिन थिरेपी** का विकास किया। उन्होंने आमतौर पर चिकित्सा अधिकारियों द्वारा सिफारिश की जाने वाली 'रोजमर्रा के लिए जरूरी मात्रा" से अधिक मात्रा में लोगों को विटामिनों की खुराक देने की हिमायत की। जब पॉलिंग और उनके सहयोगियों ने मानसिक बीमारियों के इलाज के लिए विटामिनों के उपयोग सम्बन्धी अपने निष्कर्षों को 1973 में प्रकाशित किया तो अमेरिकी मानसिक रोग चिकित्सकों के एसोसियेशन ने उनपर तीखे हमले किये। इन सरकारी डाक्टरों ने कहा कि इस प्रकार की मेगा विटामिन थिरेपी बकवास है और इसके हिमायती फर्जी हैं।

यह समझना मुश्किल नहीं है कि पॉलिंग की इस खोज ने सरकारी चिकित्सा के मठाधीशों को क्यों बेचैन कर दिया था। जाहिर है कि इससे इन चिकित्सकों और बाजार एवं मुनाफे के चिकित्सा तंत्र से जुड़े तमाम निहित स्वार्थों की अंधाधुंध लूट पर बन आयी थी। पॉलिंग की मेगाविटामिन चिकित्सा विधि ने यह सम्भव बना दिया था कि सिर्फ रोजमर्रे की खुराक को बदलकर और सस्ते विटामिनों की खुराक को बढ़ाकर कई बीमारियों की रोकथाम और इलाज किया जा सकता है—बिना तरह-तरह की महंगे परीक्षणों की चकरघिन्नी से गुजरे हुए, बिना अपनी कमाई को तरह-तरह के विशेषज्ञों की तिजोरियों के हवाले किये हुए। पॉलिंग की इस सोच ने पूंजीवादी दवा-व्यापार से जुड़े तमाम निहित स्वार्थों और पुरानी धारणाओं को खुली चुनौती दे दी थी।

1970 में पॉलिंग की एक पुस्तक प्रकाशित हुई—'विटामिन सी एण्ड कॉमन कोल्ड' (विटामिन सी और साधारण जुकाम)। इस पुस्तक ने चिकित्सा जगत में तहलका मचा दिया। चिकित्सा अधिकारियों और दवा उद्योग ने पॉलिंग के शोध की खिल्ली उड़ायी और कुप्रचार अभियान चलाकर उसे निरर्थक साबित करने की भरपूर कुचेष्टा की। एक बार फिर पॉलिंग पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने अपने क्षेत्र का उल्लंघन किया है। वह एक "प्रशिक्षित पोषण विशेषज्ञ" नहीं हैं। पॉलिंग ने इस प्रकार के आरोप लगाने वालों के बारे में विनम्रतापूर्वक सिर्फ इतना कहा कि **उनके प्रति इस शत्रुतापूर्ण रवैये का कारण "शायद यह है कि दवा कम्पनियों की एक प्राकृतिक द्रव्य के बारे में दिलचस्पी कम इसलिए है क्योंकि यह बेहद कम कीमत पर उपलब्ध है और इसे पेटेण्ट नहीं कराया जा सकता।"**

तमाम विरोधों के बावजूद पॉलिंग अपने निष्कर्षों पर दृढ़ थे और उन्होंने अनेक अध्ययनों द्वारा यह सिद्ध किया कि विटामिन सी की बड़ी मात्रा में खुराक लेने से साधारण जुकाम की सफलतापूर्वक रोकथाम की जा सकती है और यदि उचित मात्रा में शरीर में उसकी खुराक पहुंच जाये तो बार-बार होने से इसे रोका जा सकता है और उसकी तीव्रता कम की जा सकती है। दुनिया भर में लोगों ने पॉलिंग की इस

खोज को हाथोंहाथ लिया। उनकी पुस्तक अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तकों में शुमार की गयी और पॉलिंग का नाम घर-घर में आदर के साथ लिया जाने लगा। हालत यह हुई कि दवा की दुकानों में विटामिन सी की गोलियों का टोटा पड़ गया।

हर नयी वैज्ञानिक खोज पर विवादों का उठ खड़ा होना पॉलिंग के वैज्ञानिक जीवन की एक नियति सी बन गयी थी। पॉलिंग ने विटामिन थिरेपी के अमल को आगे बढ़ाते हुए जब यह निष्कर्ष निकाला कि कैंसर जैसे जानलेवा बीमारी का भी काफी हद तक सफलतापूर्वक इलाज करने में विटामिन सी काफी उपयोगी हो सकता है तो एक बार फिर बावेला उठ खड़ा हुआ। 1979 में जब इवान कैमरान के साथ मिलकर उन्होंने कैंसर और विटामिन सी पुस्तक लिखी तो एक बार फिर आधिकारिक चिकित्सकों ने इस नयी खोज को किनारे लगाने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया। उन्होंने कई "प्रयोगों" के जरिये इसे खारिज करने की कोशिश की। पॉलिंग ने इन प्रयोगों की ईमानदारी और विधि पर ही सवाल खड़े कर चुनौती दी। मुख्य धारा की मीडिया ने इस बार भी कुप्रचार अभियान में बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। इस बार वह और अधिक घटिया स्तर पर उतरकर विटामिन थिरेपी को नीमहकीमी नुस्खा बताया और पॉलिंग की एक सठियाये हुए एक ऐसे जीनियस के रूप में चित्रित किया जिसका दिमाग फिर गया है।

विज्ञान और तकनोलाजी के पैरों में पड़ी बेड़ियां तोड़नी ही होंगी

तमाम सत्ताधर्मी प्रतिष्ठानों और बाजार की निहित स्वार्थी शक्तियों द्वारा लीनस पॉलिंग के प्रति जो रुख अख्तियार किया गया वह न तो आश्चर्यजनक है न ही अस्वाभाविक। पूंजीवाद व्यापक जनसमुदाय और वैज्ञानिक अनुसंधान के बीच एक गहरी खाई पैदा करता है। यह वैज्ञानिकों को उत्पीड़ित जनता के जीवन से काट देता है। वैज्ञानिक अनुसन्धानों को जनता की विभिन्न जरूरतों को पूरा करने की दिशा में केन्द्रित करने के बजाय पूंजीवाद मुनाफे और युद्ध की जरूरतों के लिए विज्ञान को बंधुआ बना लेता है।

लीनस पॉलिंग ताउम्र स्थापित रूढ़ियों और निहित स्वार्थों को चुनौती देते रहे। उन्होंने जोखिम उठाने का साहस किया। वैज्ञानिक क्षेत्र के मठाधीशों द्वारा उनके निष्कर्षों को नकार देने के बाद वे सीधे जनता की अदालत में जाते थे, क्योंकि उन्हें जनता से प्यार था, उसके विवेक और न्यायप्रियता पर दृढ़ विश्वास था। एक सच्चे सत्यान्वेषी की तरह वे सच्चाई को जैसा महससू करते थे उसी रूप में लोगों के सामने ले जाने में कभी भी नहीं डिगे—चाहे नाभिकीय हथियारों के खतरों का मसला रहा हो, सामाजिक परिवर्तन की जरूरत का सवाल रहा हो या मेगाविटामिन थिरेपी की बात हो जनता के हितों के साथ उन्होंने कभी समझौता नहीं किया।

लीनस पॉलिंग का समूचा जीवन संघर्ष हमें पूंजीवाद के अन्तर्गत विज्ञान और समाज के अन्तरविरोधों को समझने और उन्हें सुलझाने के लिए हमारा मार्गदर्शन करता है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण सूत्र जो हमें मिलता है, वह यह है कि विज्ञान और तकनोलाजी के पैरों में पड़ी बेड़ियों को तोड़ने के लिए हमें बाजार और मुनाफे पर टिके समूचे तंत्र को ध्वस्त करना होगा और एक नये उत्पादन तंत्र, राजकाज और समाज के बिलकुल नये ढांचे का निर्माण करना होगा।

●

विज्ञान बनाम पोंगापंथ

नेताओं के झूठ, घोटालों, हत्या-बलात्कार
और पुलिस फायरिंग की खबरों के बीच
अखबारों की सुर्खियों में आने लगा
एक महान वैज्ञानिक का नाम
टीवी के पर्दे पर दिखने लगीं उसकी छवियां
बरसों से व्हीलचेयर में सिमटा
उसका पंगु शरीर
लेकिन मस्तिष्क उड़ान भरता हुआ
ब्रह्माण्ड के अनंत विस्तार में
खोलता हुआ मानवीय जिज्ञासा के नये-नये द्वार
उठाता हुआ प्रश्न
और ढूंढ़ता हुआ उनके मेधावी उत्तर
मानो देता हुआ चुनौती उन शक्तियों को
जो बांध देना चाहती हैं
इंसान के शरीर को और मन को
जकड़ देना चाहती हैं उसे
वर्तमान और बीते हुए कल से.....
उसके लघु शरीर के सामने
बौनी पड़ जाती हैं विराट बाधाएं
वह जगाता है विश्वास इंसान की
और विज्ञान की ताकत में ।
कुछ भी नहीं है असम्भव
कुछ भी नहीं अलौकिक
कुछ भी नहीं है अबूझ
नहीं कुछ भी सवालों से परे
विज्ञान की मशाल लेकर इंसानियत
बढ़ती ही जायेगी अंधेरे का सीना चीरते हुए ।

लेकिन अभी तो टकराना है
पोंगापंथ के काले पर्दे से
ढहानी है अंधविश्वासों की दीवार....
महान वैज्ञानिक की तस्वीरों पर
जल्दी ही छा गये वे
जो खींच ले जाना चाहते हैं देश को सदियों पीछे
अंधी आस्था, अंधा विश्वास, अंधा उन्माद
गंजेड़ी-भंगेड़ियों के झुण्ड
'मंदिर वहीं बनायेंगे' के जुनूनी नारे
"भूकंप तो कुंभ क्षेत्र में आने वाला था
साधुओं के तप से खिसककर
गुजरात चला गया", जैसे अमृतवचन !
स्टीफन हाकिंग,
हैरान मत होना अगर कभी तुम सुनो
कि तुम्हारा व्याख्यान सुनकर लौटे
विज्ञान के प्रोफेसर ने
किसी सदाचारी-दुराचारी-बाल्टी-कड़ाही बाबा के
चरणों में लोट लगाई
और फिर पूरे बदन पर भभूत पोतकर
अपने पापों को गंगा में बहाने चला गया ।

विज्ञान और पोंगापंथ का ऐसा अद्भुत संगम
(जिसमें सरस्वती लुप्त है)
हमारी इस भारतभूमि की विशेषता है ।

(दिशा छात्र संगठन की
केन्द्रीय दीवार पत्रिका
'ज्वार' से साभार)

■ पुस्तक परिचय

'तरुणाई का तराना'

क्रान्तिकारी छात्रों-नौजवानों की शौर्यगाथा

'तरुणाई का तराना' कोई काव्यग्रंथ नहीं बल्कि चीन के क्रान्तिकारी लेखक याङ मो का ऐसा उपन्यास है जिसमें उन्होंने एक सड़कर बजबजा रहे अर्द्धसामन्ती-अर्द्धऔपनिवेशिक समाज की मुक्ति के लिए अदम्य उत्साह और अकूत बलिदानों का संकल्प लिए संघर्ष कर रहे नौजवान छात्र-छात्राओं की शौर्यगाथा का अत्यन्त सजीव, प्रेरणादायी और रोचक वर्णन किया है। मानव समाज का अब तक पूरा इतिहास निरपवाद रूप से इस बात का गवाह है कि पुराने समाज की कोख से नये समाज के जन्म में तरुणों का ही रक्त सर्वाधिक बहा है। समाज के क्रान्तिकारी परिवर्तन की इतिहासधारा असंख्य तरुण-तरुणियों के शौर्यपूर्ण संघर्षों से रक्तरंजित होती रही है, उनके रक्त से खिंची इतिहास की अग्रगामी रेखायें युग-युग से आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा की स्रोत रही हैं, और सदा बनती रहेंगी। यह उपन्यास सिर्फ क्रान्तिकारी संघर्षों का विवरण मात्र नहीं बल्कि क्रान्तिकारी संघर्ष की राजनीति, क्रान्ति की दिशा, सही रणनीति और उसके मुताबिक सही रणकौशल के सैद्धान्तिक विवेचन और उनके व्यावहारिक प्रयोग का एक अमूल्य दस्तावेज भी है।

विश्वनाथ मिश्र

इस सदी का चौथा दशक चीन के लिए एक भयानक अंधकार काल था, देश नैराश्यपूर्ण राष्ट्रीय संकट में घिरकर छटपटा रहा था। एक तरफ, हमलावर जापानी साम्राज्यवाद चीन के उत्तर-पूर्वी प्रान्तों पर कब्जा करके तेजी से भीतर की ओर घुसता चला आ रहा था। और दूसरी तरफ, सत्तारूढ़ कुओमिन्ताङ सरकार ने च्याङ काई-शेक के नेतृत्व में अप्रतिरोध और समर्पण की नीति पर अमल करते हुए विभिन्न अपमानजनक समझौतों पर हस्ताक्षर करके चीन के कई प्रान्तों पर जापान की सम्प्रभुता स्वीकार कर ली थी। इतना ही नहीं, उसने जापानी आक्रमण का प्रतिरोध कर रही लाल सेना और कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में संघर्ष कर रहे क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं और देशप्रेमी नौजवानों का बेरहमी से दमन और कत्लेआम करना शुरू कर दिया था। 1935 की सर्दियों में जब जापानी साम्राज्यवादियों ने चीन के होपेई और चाहार प्रान्तों में अपनी कठपुतली सरकारें गठित कर दीं और इस तरह पूरे उत्तरी चीन को खतरा पैदा हो गया, तो पेइपिङ के छात्र-छात्राओं ने देश की जनता का आह्वान किया, "चीन के लोगो, देश की रक्षा के लिए उठ खड़े हो।" इस नारे के साथ शुरू किया गया 9 दिसम्बर का आन्दोलन चीनी जनता द्वारा जापानी आक्रमण और प्रतिक्रियावादी कुओमिनताङ सरकार की अप्रतिरोध की नीति के विरोध की शानदार शुरुआत थी।

ये ही घटनाएं 'तरुणाई का तराना' उपन्यास की पृष्ठभूमि में हैं। असंख्य बहादुर युवक और युवतियां मशीनगनों, संगीनों, क्रूर यातनाओं, लम्बे कारावासों और यहां तक कि प्राणदण्ड की परवाह किये बिना दुश्मन के खिलाफ विकट संघर्ष में कूद पड़े। संघर्ष में एक गिरता, दूसरा उसकी जगह लेता, कुछ मुस्कराते हुए प्राण न्योछावर कर देते, सभी के दिलों में यह अटल विश्वास था कि एक-न-एक दिन उनका देश न सिर्फ साम्राज्यवाद को खदेड़कर बाहर कर देगा, बल्कि इंसानियत की गर्दन पर से सामन्ती शोषण और उत्पीड़न के जुवे को भी उतार फेंकेगा, और एक नये समाज का उदय होगा जिसकी लाल रश्मियां समाजवादी समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करेंगी।

प्रसिद्ध लेखक जार्ज लुकाच के शब्दों में, "शहीद होना आसान है, विचार की खातिर निन्दा सहते हुए जीना ज्यादा कठिन है।" कहने की जरूरत नहीं कि 'तरुणाई का तराना' के संघर्षशील युवक-युवतियां शहादत के अंधे दीवाने नहीं हैं जो मौत की शमा पर परवान चढ़ जाते हैं बल्कि वे समाज के क्रान्तिकारी परिवर्तन की एक सुनिश्चित और उद्देश्यपूर्ण विचारधारा से लैस हैं। उनके जीवन का एक-एक क्षण, उनके खून का एक-एक कतरा क्रान्तिकारी चेतना के मातहत अपने महान लक्ष्य की दिशा में सार्थक योगदान करता है। और उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण और केन्द्रीय पक्ष भी यही है कि एक तरुण या तरुणी क्रान्तिकारी जीवन की अग्निदीक्षा कैसे होती है।

उपन्यास का केन्द्रीय चरित्र लिन ताओ-चिङ एक ऐसी ही तरुणी है जो एक पिछड़े अर्द्धसामन्ती-अर्द्धऔपनिवेशिक समाज की संड़ांध, क्रूरता और अमानवीयता के विरुद्ध संघर्ष में तप कर निखरते जा रहे एक युवा बुद्धिजीवी का प्रतिनिधित्व करती है।

ताओ-चिङ के जन्म और बचपन की कहानी सामन्ती व्यवस्था की चरम पतनशीलता के दौर में सामन्ती जमींदारों की क्रूर ऐयाशी और निकृष्ट धनलिप्सा की लोमहर्षक गाथा है। जेहोक प्रान्त के सुदूर पहाड़ी गांव के एक निहायत गरीब मजदूर परिवार की एक विधवा लड़की सिउ-नी को उस इलाके का जमींदार लिन पो-ताङ अपनी हवस का शिकार बनाता है और जब उससे एक बच्ची पैदा हो जाती है तो जमींदार का मन सिउ-नी से उचट जाता है और वह उसे अपनी हवेली से निकालकर उसके पहाड़ी गांव भेज देता है जहां वह लुटी-पिटी, विक्षिप्त-सी हालत में नदी में कूदकर आत्महत्या कर लेती है।

जमींदार की हवेली में ताओ-चिङ मामूली से मामूली गलती पर मार खाती हुई, जरखरीद गुलाम की तरह रहती थी। उसकी सौतेली मां उसे तंग करने का कोई मौका नहीं छोड़ती थी। वह नौकरों के कमरे में सोती थी। उसके कपड़े फटे हुए और चीलरों से भरे रहते, सर्दी से वह ठिठुरती रहती और नंगे पांवों में बिवाइयां फट जातीं। वह अपना सारा समय नौकरों, उनके बच्चों और गली-कूचों में चीथड़े और कोयला बीनने वाले दीन-हीन और अनाथ

लड़के-लड़कियों के बीच बिताती। जीवन के इस ढर्रे ने उसे गरीब, मेहनतकश लोगों के प्रति हमदर्दी और अपने जमींदार बाप और उसकी पत्नी के प्रति नफरत से भर दिया।

थोड़ी बड़ी होने पर जमींदार की पत्नी ने ताओ-चिङ को स्कूल भेजना शुरू कर दिया क्योंकि पढ़ी-लिखी युवती की बाजार में ज्यादा कीमत थी। लेकिन हाईस्कूल की परीक्षा से दो माह पहले ही उसकी सौतेली मां ने पढ़ाई का खर्च भेजना बन्द कर दिया क्योंकि ताओ-चिङ ने एक धनी बूढ़े खूसट अफसर से 'विवाह' करने से इंकार कर दिया था।

ताओ-चिङ को जमींदार की हवेली की नौकरानी चाची वाङ से अपनी मां के साथ हुए जुल्म की कहानी भी मालूम हो चुकी थी। उसने फिर कभी अपने घर वापस न जाने का फैसला कर लिया। सहेलियों की मदद से उसने हाईस्कूल की पढ़ाई पूरी की और नौकरी की तलाश में अपने एक मौसेरे भाई के पास चली गई जो एक गांव के स्कूल में शिक्षक था। परन्तु वहां पहुंचने पर उसे पता चला कि वह प्रधानाध्यापक की बदतमीजी से ऊबकर, अपनी पत्नी समेत कहीं चला गया था। बहरहाल प्रधानाध्यापक ने उसे स्कूल में ठहरने की जगह दे दी और आश्वासन दिया कि वह मजिस्ट्रेट से सिफारिश करके उसे स्कूल में नौकरी दिलवा देगा। दरअसल, प्रधानाध्यापक इस खूबसूरत लड़की को मजिस्ट्रेट के यहां सप्लाई करके अपनी तरक्की का मार्ग खोलना चाहता था। इंतजार के दिनों में ताओ-चिङ की मुलाकात पीकिङ विश्वविद्यालय के एक छात्र युङ-त्से से हुई, जो उसी गांव का रहने वाला था और प्रधानाध्यापक का मौसेरा भाई था। उसका बाप गांव का एक प्रभावशाली जमींदार था तथा मजिस्ट्रेट का भी दोस्त था। युङ-त्से ने अपनी रूमानी साहित्यिक बातों से कल्पनाशील ताओ-चिङ को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। एक बार जब ताओ-चिङ को प्रधानाध्यापक की कुत्सित योजना का पता चला तो वह हताश होकर आत्महत्या करने जा रही थी, तभी युङ-त्से ने आकर उसे बचा लिया। उसने अपने प्रभाव से ताओ-चिङ को उस प्राइमरी स्कूल में अध्यापिका भी बनवा दिया। ये सब बातें थी जिनकी वहज से ताओ-चिङ युङ-त्से के काफी करीब खिंच आयी। पढ़ाई करने पीकिङ चले जाने के बाद भी वह ताओ-चिङ को लगातार खत लिखा करता था। ताओ-चिङ उसके प्रति अधिक से अधिक भावुक होती गयी।

रोमांटिक भावकल्पना में विचरण करती हुई ताओ-चिङ के दिमाग में राजनीति ने सबसे पहले तब प्रवेश किया जब उसकी मुलाकात एक कम्युनिस्ट कार्यकर्ता लू चिआ-चुआन से हुई, जो पीकिङ विश्वविद्यालय का छात्र था। वह अपनी बीमार मां और बहन से मिलने गांव आया था। इन्हीं दिनों जापान ने चीन पर आक्रमण करके उसके तीन उत्तर-पूर्वी प्रान्तों पर कब्जा कर लिया था। इसकी सब जगह गरमागरम चर्चा चल रही थी। अध्यापक कक्ष में चल रही चर्चा के दौरान लू चिआ-चुआन ने जिस बेबाक और गहरी राजनीतिक समझदारी का परिचय देते हुए अपनी बात रखी उससे ताओ-चिङ को एक नई रोशनी मिल गयी। लू चिआ-चुआन की बात से यह चीज तो उसकी समझ में आ रही थी कि बिना सशस्त्र संघर्ष के जापानी साम्राज्यवाद को शिकस्त नहीं दी जा सकती, लेकिन अन्य अध्यापकों की भांति उसकी भी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि इसमें बुद्धिजीवियों की क्या भूमिका हो सकती है। लू चिआ-चुआन का उत्तर था: "जरूरी नहीं कि हर कोई देशभक्त अपने कंधे पर रायफल धारण करे और रणक्षेत्र में जाकर लड़े। आप लोग प्रचार कार्य द्वारा जनता को जागृत कर सकते हैं। अगर आप लोग छात्रों को अपने देश को प्यार करने और सम्मान देने की शिक्षा दें तो यह हथियार उठाने जैसा ही है।" दरअसल "किसी भी सशस्त्र क्रान्ति के लिये विचारों की क्रान्ति एक अनिवार्य पूर्वशर्त है"—इस क्रान्तिकारी सिद्धान्त की पहली शिक्षा ताओ-चिङ को लू चिआ-चुआन से प्राप्त हुई। उसके प्रभावशाली व्यक्तित्व, गहरी राजनीतिक समझ और स्पष्टवादिता ने ताओ-चिङ को अभिभूत कर दिया। अब वह अपने मन में तुलना करने लगी कि जहां एक तरफ युङ-त्से सिर्फ सुन्दर साहित्यिक रूपों और प्रचलित प्रेमालापों की ही चर्चा किया करता था और वर्तमान समाज की विद्रूपताओं और भयंकरताओं से एकदम कटा-कटा सा अपनी रूमानी दुनिया में मगन रहता था, उसके विपरीत, यह नौजवान वर्तमान सामाजिक जिन्दगी से एक जिन्दा सरोकार रखता था।

ताओ-चिङ अपने दिल से युङ-त्से को निकाल तो नहीं पायी, अलबत्ता उसने राजनीतिक जीवन में कुछ-कुछ प्रवेश जरूरत कर लिया। अब वह अध्यापकों और छात्रों के बीच जनविरोधी कुओमिन्ताङ

सरकार की अप्रतिरोध की नीति की आलोचना किया करती और बच्चों को महान देशभक्तों की कहानियां सुनाया करती। इस तरह उसके और छात्रों के बीच जीवन्त राजनीतिक रिश्ता पनपने लगा। ताओ-चिङ के व्यक्तित्वांतरण की शुरुआत हो चुकी थी।

परन्तु प्रधानाध्यापक की बकझक और नीचतापूर्ण व्यवहार से तंग आकर ताओ-चिङ को स्कूल की नौकरी छोड़ देनी पड़ी। वह अपने घर वापस जा नहीं सकती थी। लिहाजा वह पीकिङ विश्वविद्यालय में युङ-त्से के पास चली गयी।

युङ-त्से एक निहायत निकृष्ट कोटि का बुद्धिजीवी था। उसकी दुनिया एकदम आत्मकेन्द्रित थी। हालांकि अभी उसकी पढ़ाई पूरी नहीं हुई थी, फिर भी, उसने अभी से अपने दोस्तों और प्रोफेसरों की इस उम्मीद में चापलूसी और खातिरदारी शुरू कर दी थी कि उनके प्रयास से उसे कोई न कोई अच्छी नौकरी मिल जायेगी। ताओ-चिङ आजीविका के मामले में स्वयं आत्मनिर्भर बन जाना चाहती थीं और उसने कई जगह कोशिश की पर सफल न हो सकी। युङ-त्से बातों से तो ताओ-चिङ के आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन जाने का हामी था, परन्तु भीतर-भीतर वह अत्यन्त दकियानूसी व्यक्ति था। वह चाहता था कि ताओ-चिङ महज एक घरेलू पत्नी बन कर रहे। दरअसल वह मूल्यों के स्तर पर सामन्ती मूल्यों से जकड़ा हुआ था, उसके अध्ययन का विषय भी पुरातन सामन्ती चीनी साहित्य था, यहां तक कि उसका पहनावा और रहन-सहन भी पुरातनपंथी ही था। इसके विपरीत ताओ-चिङ वर्तमान में जीती हुई एक भविष्योन्मुख युवती थी। वह पुरातनपंथी समाज की जकड़बन्दियों से निकल कर एक आजाद समाज में उन्मुक्त सांस लेना चाहती थी। युङ-त्से और ताओ-चिङ का आपसी अन्तरविरोध इतना बढ़ा कि एक दिन ताओ-चिङ हमेशा के लिए युङ-त्से से पिण्ड छुड़ा लेने के लिए भाग निकलने की सोचने लगी।

1933 का मई दिवस समारोह पीकिङ विश्वविद्यालय के छात्रों ने काफी जोर-शोर से मनाया और पुलिस व सेना के प्रबल प्रतिरोध का मुकाबला करते हुए जापानी साम्राज्यवाद और अप्रतिरोध व समर्पण की नीति पर चल रही जन-विरोधी कुओमिन्ताङ सरकार के खिलाफ जबरदस्त प्रदर्शन किये और जमकर नारेबाजी की। पुलिस और गुप्तचर विभाग के जासूस देशभक्त और क्रान्तिकारी छात्र-छात्राओं को खोज-खोज कर गिरफ्तार करने लगे, यातनाएं देने लगे और उनकी निर्मम हत्या करने लगे। खासतौर से कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी लू चिआ-चुआन की पग-पग पर जासूसी और खोजबीन की जाने लगी। ऐसी ही संकटपूर्ण स्थिति में, लू चिआ-चुआन जासूसों और पुलिस को चकमा देते हुए एक दिन ताओ-चिङ के कमरे में पहुंचा, जो युङ-त्से की कूढ़मगजी से अत्यन्त क्षुब्ध, हताश बैठी हुई थी। उसे अपना जीवन नीरस और बेमतलब लग रहा था। बातचीत के दौरान एकदम हताश होकर उसने लू चिआ-चुआन से कहा कि ऐसे बन्द जीवन से तो बेहतर है क्रान्ति में शिरकत करके बहादुराना मौत पाना। लू चिआ-चुआन ने ऐसी सोच को गलत बताया और कहा, "हम क्रान्ति में मरने के लिए नहीं, बल्कि जीने के लिए शामिल होते हैं—पहले से कहीं अधिक सार्थक जीवन जीने के लिए और करोड़ों उत्पीड़ित लोगों के लिए खुशहाली लाने के लिए जीते हैं।" उसने यह भी कहा कि बिना कोई सार्थक काम किये मरने की सोचना संघर्ष से पलायन है। उसने उसे कुछ कागजात दो-तीन दिन के लिए सुरक्षित रखने के लिए दिये तथा कहा कि वह इन्हें आकर ले जायेगा और अगर नहीं आया तो ताओ-चिङ इन्हें जला दे। इसके बाद वह एक जरूरी संदेश एक निश्चित ठिकाने पर पहुंचाने के लिए ताओ-चिङ को भेज कर उसके लौटने का इंतजार करने लगा। इसी बीच युङ-त्से वापस आ पहुंचा। लू चिआ-चुआन को अपने कमरे में देखकर वह जल-भुन उठा और उसे अपने घर से निकाल दिया। बाहर निकल कर वह अपने एक दोस्त के दरवाजे पर पहुंचा ही था कि गिरफ्तार कर लिया गया। जेल में उसे भंयकर यातनायें दी गयीं, फिर भी दुश्मन उससे कोई राज उगलवाने में सफल न हो सका। यही नहीं, लू चिआ-चुआन जेल में भी संघर्ष करता रहा, अपनी मांगों को लेकर उसने जेल में कैदियों की भूख हड़ताल करा दी। अन्ततः उसे मार डाला गया। परन्तु मरने से पहले वह अन्तिम सांस तक अपने क्रान्तिकारी लक्ष्य की दिशा में काम करता रहा।

"हम क्रान्ति में मरने के लिए नहीं, बल्कि जीने के लिए शामिल होते हैं—पहले से कहीं अधिक सार्थक जीवन जीने और करोड़ों उत्पीड़ित लोगों के लिए खुशहाली लाने के लिए जीते हैं।"

इधर ताओ-चिङ जब संदेश पहुंचा कर वापस लौटी तो लू चिआ-चुआन को न पाकर सशंकित हो उठी। वह युङ-त्से के व्यवहार से अत्यन्त क्षुब्ध और दुखी थी। दस दिन तक जब लू चिआ-चुआन वापस अपने कागजात लेने न लौटा तो उसने कागजात वाला ब्रीफकेस खोला। उसमें साम्राज्यवाद-विरोधी और कुओमिन्ताङ सरकार विरोधी पर्चे थे। उसने उन्हें जलाया नहीं, बल्कि साहस करके अकेले ही कई रात मेहनत करके गलियों में जगह-जगह चिपका आयी। बिना कुछ बताये बाहर निकल जाने और देर रात को वापस आने की वजह से युङ-त्से बहुत नाराज था। दोनों का आपसी कलह इस कदर बढ़ गया कि ताओ-चिङ ने घर छोड़ने का फैसला कर लिया।

अभी वह अपना सामान समेट कर जाने की तैयारी कर ही रही थी कि एक गद्दार कम्युनिस्ट कार्यकर्ता ताई यू उससे मिलने आ पहुंचा। वह कुओमिन्ताङ सरकार का मुखबिर बन चुका था, परन्तु ताओ-चिङ को इसका पता न था। लिहाजा उसने लू चिआ-चुआन से अपनी अन्तिम मुलाकात और पर्चे चिपकाने का सारा विवरण खोलकर बता दिया। ताई यू धैर्यपूर्वक सुनता रहा। वह बार-बार ताओ-चिङ को 'कामरेड', 'कामरेड' कहकर सम्बोधित करता तथा क्रान्तिकारी लफ्फाजी की बातें बताता रहा। परन्तु भोली-भाली और अनुभवहीन ताओ-चिङ इसे समझ न पायी। ताई यू के चले जाने के बाद वह दूसरी जगह जाकर रहने लगी। यहां वह क्रान्तिकारी साहित्य पढ़ने और क्रान्तिकारी साथियों से मुलाकात करने के लिए पूरी तरह आजाद थी। वह जब-तब गिरफ्तार क्रान्तिकारी साथी सू निङ को देखने और अपनी सहेली वाङ सियाओ-येन से मिलने चली जाया करती थी। ताई यू उसकी गतिविधियों की टोह लेता रहता था। गद्दार ताई यू के कारण वह एक दिन गिरफ्तार हो गयी। गिरफ्तारी के इस षड्यंत्र में वह बूढ़ा खूसट अफसर हू मेङ ऐन भी शामिल था, जो उससे शादी करना चाहता था। उस बूढ़े ने ताओ-चिङ को जमानत पर इसलिए रिहा करवा दिया ताकि वह रुपयों के लालच या धौंसपट्टी दिखाकर उसे मना सके। परन्तु ताओ-चिङ ने उसे दुत्कार दिया। हू ने उसे धमकाते हुए तीन दिन की मोहलत दी तथा यह

कहकर चला गया कि यदि उसने इस अवधि में उसकी बात नहीं मानी तो वह उसे कम्युनिस्ट गतिविधियों में शामिल होने के इल्जाम में फंसा देगा। ताओ-चिङ अपनी सहेली सियाओ-येन के पिता प्रोफेसर वाङ हुङ पिन के सहयोग से तिङ-त्सिएन नामक स्थान पर चली गयी। वहां प्रोफेसर वाङ की सिफारिश पर एक प्राइमरी स्कूल में उसे अध्यापिका की नौकरी मिल गयी।

तिङ त्सियेन में काम करते हुए ताओ-चिङ की मुलाकात एक कम्युनिस्ट कार्यकर्ता चियाङ हुआ से हुई। उसके सम्पर्क में आकर ताओ-चिङ ने काफी राजनीतिक जानकारी प्राप्त की तथा उसे मेहनतकश लोगों से मेलजोल बढ़ाने की प्रेरणा मिली। चियाङ हुआ ताओ-चिङ को व्यावहारिक कामों में रुचि लेने और मजदूरों-किसानों से घनिष्ठ सम्पर्क बढ़ाने की सलाह देकर चला गया।

इस बीच गद्दार क्रान्तिकारी ताई यू की साजिश के चलते ताओ-चिङ फिर गिरफ्तार होने वाली थी। अपने एक छात्र से इसकी भनक मिलते ही ताओ-चिङ को वह जगह छोड़ देनी पड़ी। वह अपनी एक सहेली सिऊ यीङ के घर जाकर छिप गयी। यहीं पर उसकी मुलाकात एक अधेड़ क्रान्तिकारी महिला से हुई जिसकी एक बार चिआङ हुआ ने "मौसी ली" कहकर चर्चा की थी। मौसी ली पार्टी कार्यकर्ता थी। उसकी मदद से तथा पार्टी कार्यकर्ताओं की राय से ताओ-चिङ को एक जमींदार परिवार के बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने का काम मिल गया। पढ़ाने के बहाने कुछ जरूरी सूचनाएं एकत्र करना तथा उन्हें पार्टी को सौंपना उसकी जिम्मेदारी थी।

जमींदार परिवार में काम करते हुए ताओ-चिङ ने एक घरेलू नौकरानी से मेलजोल बढ़ा लिया तथा उसकी मदद से वह काली सूची प्राप्त करने में सफल हो गयी जो जमींदार के बेटे सूङ यू पिन ने तैयार कर रखी थी, जिसमें तमाम कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों और देशभक्तों के नाम थे। दरअसल हुआ यह था कि जमींदार के शोषण और अत्याचार से तंग आकर एक दिन एक मजदूर ने उसके बेटे सूङ यू पिन की हत्या कर दी थी। इस घटना से पूरे इलाके में सनसनी फैल गयी थी। ताओ-चिङ इस घटना से बहुत प्रभावित हुई थी। इसी घटना के प्रतिक्रियास्वरूप सूङ यू-पिन ने कुओ-मिन्ताङ प्रतिक्रियावादियों से मिलकर तमाम क्रान्तिकारियों और देशभक्तों को पकड़वा देने की योजना बना ली थी। इनमें ताओ-चिङ का नाम भी था।

> **"हुङ पिन, सोचो तो, मैं पचास के करीब की हो चुकी हूं, और सियाओ-येन की बहनें अभी छोटी-छोटी हैं। अगर तुम बाहर जाओ और कुछ हो गया तो..." प्रोफेसर ने झिड़कते हुए कहा, "अगर किसी ने यह खतरा उठाने की हिम्मत नहीं की तो यह दुनिया जल्दी ही खत्म हो जायेगी।"**

ताओ-चिङ को वहां से निकल भागने में एक मजदूर चेङ तेह-फू से मदद मिली। यह वही खेत मजदूर था जो पहले ताओ-चिङ के जमींदार बाप का आसामी रह चुका था। परन्तु उसके जमींदार बाप ने इस मजदूर को बरबाद कर दिया था। उसने चेङ की पत्नी को बलात्कार का शिकार बनाया था जिसकी ग्लानि न बर्दाश्त कर पाने के कारण उसने आत्महत्या कर ली थी। इसके बाद वह वहां से भागकर यहां चला आया था। पहले तो चेङ तेह-फूह ताओ-चिङ से नफरत करता था, परन्तु बाद में जब उसे ताओ-चिङ के व्यक्तित्व की असलियत का पता चला तो वह दिल से उसके साथ हो गया। ताओ-चिङ में भी एक भारी परिवर्तन हुआ। अब तक जमींदारों के प्रति उसके मन में जो घृणा थी वह व्यक्तिगत कारणों से थी—उसके जमींदार बाप ने उसे अत्यन्त घृणित रूप में प्रताड़ित किया था। परन्तु खेत मजदूर के साथ उसके बाप द्वारा किये गये शर्मनाक व्यवहार ने उस पूरे जमींदार वर्ग के खिलाफ घृणा से भर दिया। अब उसके जेहन में यह तसवीर साफ हो गयी थी कौन उसका मित्रवर्ग है और कौन शत्रुवर्ग।

जमींदार के यहां से निकल भाग कर ताओ-चिङ पुनः पेइपिङ आ गई, तथा अपनी सहेली सियाओ-येन से मुलाकात की। ताओ-चिङ के लगातार सम्पर्क से सियाओ-येन दिली तौर पर क्रान्तिकारी विचारों की कायल हो गई।

इसी बीच ताओ-चिङ फिर गिरफ्तार हो गयी। बूढ़ा खूसट निदेशक हू मेङ-ऐन अब भी उसके पीछे पड़ा हुआ था। जेल में ताओ-चिङ को भयंकर यातनायें दी गयीं। उसकी नाक में मिर्च का पानी डाला गया, उसके शरीर को गर्म लोहे की सलाखों से दागा गया। वह खून से लथपथ कई दिनों तक बेहोश रही, फिर भी उसने अपनी जबान न खोली। जेल में ही उसकी मुलाकात लम्बे संघर्षों में तपी-तपायी क्रान्तिकारी सिद्धान्त और व्यवहार की ढेर सारी शिक्षा ताओ-चिङ ने ग्रहण की। चेङ चिङ को मृत्यु दण्ड दे दिया गया। ताओ-चिङ इससे दुखी तो बहुत हुई परन्तु अब क्रान्तिकारी संघर्ष और क्रान्तिकारी लक्ष्य में उसकी आस्था और बढ़ गयी। वह जेल के भीतर साथी कैदियों की भूख हड़ताल में भी शामिल हुई। उसी के प्रभाव से एक कैदी छात्र शू सिऊ भी क्रान्तिकारी संघर्ष की कायल बन गयी।

प्रोफेसर वाङ ने ताओ-चिङ को जमानत पर रिहा करवा दिया। इस रिहाई में सबसे बड़ा कारण यह रहा कि लाख कोशिश के बावजूद जेल अधिकारियों को ताओ-चिङ के खिलाफ कोई सबूत नहीं मिल पाया था।

जेल से छूटने के बाद कम्युनिस्ट पार्टी ने ताओ-चिङ की संकल्पबद्धता और क्रान्तिकारी सिद्धान्त और व्यवहार में आस्था तथा शिरकत को देखकर उसे पार्टी की सदस्यता प्रदान की। ताओ-चिङ के जीवन में यह एक अविस्मरणीय आनन्ददायी घटना थी। उसे पार्टी की ओर से एक महिला क्रान्तिकारी लिऊ यी-फेङ के साथ साहित्य-वितरण और जनसम्पर्क के काम में लगा दिया गया।

इस बीच उसकी सहेली सियाओ-येन गद्दार ताई यू की गिरफ्त में फंस चुकी थी। उस गद्दार ने उसे इस कदर गुमराह कर दिया था कि वह उससे शादी तक करने को तैयार हो गयी थी। ताओ-चिङ ने उसे ताई यू के सन्देहास्पद चरित्र के बारे में सतर्क भी किया पर उसने ताओ-चिङ की बात पर विश्वास नहीं किया। ताई यू इतना चालाक था कि एक बार उसने चिआङ हुआ को भी फंसा दिया था, परन्तु वह अपने कौशल से बच निकला। उसने ताई यू की पार्टी विरोधी गतिविधियों और कुओमिन्ताङ से उसकी सांठ-गांठ की पूरी रिपोर्ट पार्टी कमेटी को दे दी, जिसका नतीजा यह हुआ कि वह पार्टी से निकाल बाहर किया गया। इसी बीच सियाओ-येन का भी ताई यू से मोहभंग हो गया। उसने एक दिन ताई यू की जेब से एक ऐसी काली सूची बरामद कर ली जिसमें तमाम कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों और देशभक्तों के नाम थे। अब सियाओ-येन का पुनः ताओ-चिङ से घनिष्ठ सम्बन्ध बढ़ गया और वह क्रान्तिकारी कामों में जुट गयी। उधर पार्टी से निकाल दिये जाने

के बाद अब ताई यू भितरघाती का काम नहीं कर सकता था। अब वह कुओमिन्ताङ प्रतिक्रियावादियों के किसी काम का नहीं रहा इसलिए प्रतिक्रियावादियों ने उसकी हत्या कर दी।

जापानी साम्राज्यवाद और प्रतिक्रियावादी कुओमिन्ताङ सरकार की समर्पणकारी एवं अपीजमेण्ट की नीति के खिलाफ छात्रों का एक व्यापक संयुक्त फेडरेशन संगठित करने का निर्णय किया गया। चिआङ हुआ, ताओ-चिङ और तमाम क्रान्तिकारी एवं प्रगतिशील छात्र इस काम में जुट गये। प्रतिक्रियावादी छात्रों एवं उनके संगठनों से जमकर संघर्ष हुआ। ताओ-चिङ इसमें कई बार अपमानित और प्रताड़ित भी हुई। परन्तु अब वह पहले की तरह रूमानी क्रान्तिकारिता की शिकार न थी, न ही वह अब पहले की तरह दुस्साहसी रह गयी थी। वह एक क्रान्तिकारी विचारधारा के तहत संघर्ष के सारे कठिनाइयां झेलते हुए लक्ष्य की दिशा में निरन्तर आगे बढ़ते रहने की मानसिक परिपक्वता हासिल कर चुकी थी। अब न तो उसके अन्दर पहले जैसी कोरी आदर्शवादी कल्पनाशीलता थी और न जीवन से निराश होकर दुस्साहसपूर्ण शहादत में जीवन की सार्थकता खोजने का उतावलापन। क्रान्तिकारीकरण की आग में तपकर वह काफी निखर चुकी थी, उसने संघर्ष की निर्ममता को पहचान लिया था, तथा हुलमुलपन या उदारतावाद की दुर्बलता से निजात पा चुकी थी। यद्यपि अब भी उसके मन में शहीद लू चिआ-चुआन की एक आदर्श क्रान्तिकारी छवि बनी हुई थी, फिर भी उसके क्रान्तिकारीकरण की व्यावहारिक अग्निदीक्षा में चिआङ हुआ का अविस्मरणीय योगदान था। इसीलिए जब एक दिन चिआङ हुआ ने उसके समक्ष अपने हार्दिक प्रेम का इजहार किया तो उसने अपने को अत्यन्त सम्मानित महसूस किया, हालांकि लू चिआ-चुआन की याद एक टीस बनकर उसके मन में उठी थी, जिसकी तनिक भी कम पीड़ा चिआङ हुआ को न थी।

बहरहाल, ये क्रान्तिकारी तरुण पीकिङ विश्वविद्यालय और दूसरे विश्वविद्यालयों तथा कालेजों और स्कूलों के छात्रों का संयुक्त फेडरेशन बना लेने में सफल हो गये। उसका नेतृत्व उनके हाथ में आ गया। 9 सितम्बर 1935 को इस फेडरेशन के आह्वान पर छात्रों ने आम हड़ताल कर दी, प्रदर्शन किया, नारेबाजी की और सशस्त्र पुलिस और सेना से जमकर संघर्ष किया, जिसमें कई हताहत और कई गिरफ्तार हुए। एक तरफ माओ त्से-तुङ के नेतृत्व में लाल सेना जापानी साम्राज्यवादियों और कुओमिन्ताङ प्रतिक्रियावादियों से संघर्ष करती हुई निरंतर आगे बढ़ रही थी, वहीं, दूसरी तरफ इन तरुण छात्र-छात्राओं का वैचारिक आन्दोलन और जनसंघर्ष आम जनता को जागृत करते हुए व्यापक जनाधार तैयार करने की दिशा में निरन्तर आगे बढ़ रहा था। सिद्धान्त और व्यवहार, वैचारिक संघर्ष और सशस्त्र संघर्ष का यह परस्पर तालमेल क्रान्तिकारी संघर्ष को क्रमशः मंजिल की ओर बढ़ाता जा रहा था। युवाओं ने साम्राज्यवादी दुश्मन को उखाड़ फेंकने और युगों से सड़कर बजबजा रहे सामन्ती कचरे को साफ कर एक नये समाज की रचना का जो तराना छेड़ा उसकी रवानी में न सिर्फ अब तक तटस्थ बने पढ़ाकू छात्र ही शामिल हुए, बल्कि कई बुजुर्ग प्रोफेसर तक भी अपनी मध्यवर्गीय जड़ता को तोड़कर सड़कों पर उतर आये। 16 सितम्बर 1935 का विशाल प्रदर्शन इस मायने में अभूतपूर्व था कि उसमें प्रोफेसर वाङ जैसे बुजुर्ग अध्यापक भी अपनी बूढ़ी पत्नी और दूसरे साथियों के साथ प्रदर्शन में शामिल हुए, नारे लगाये, पुलिस और सेना के डंडे खाये। उन्होंने अपने जीवन को पहली बार सार्थक हुआ समझा। यहां पर सियाओ-येन के पिता प्रोफेसर और उसकी मां यानी श्रीमती वाङ के बीच प्रदर्शन में शामिल होने के पूर्व हुई वार्ता खासतौर से किसी भी बुद्धिजीवी अध्यापक के लिए प्रेरणादायी है। जब जवानों जैसे जोश से भरकर प्रोफेसर प्रदर्शन में जाने के लिए उठा, तो उसकी पत्नी ने चिन्तित होकर कहा, "हुङ पिन, सोचो तो, मैं पचास के करीब की हो चुकी हूं, और सियाओ-येन की बहनें अभी छोटी-छोटी हैं। — अगर तुम.... बाहर जाओ और कुछ हो गया तो..." प्रोफेसर ने झिड़कते हुए कहा, "अगर किसी ने यह खतरा उठाने की हिम्मत न की तो यह दुनिया जल्दी ही खत्म हो जायेगी।" इस पर श्रीमती वाङ भी प्रोफेसर के साथ चलने को तैयार हो गयीं।

16 सितम्बर, 1935 को हुए इस ऐतिहासिक प्रदर्शन को सोद्देश्यता, दिशा और लक्ष्य प्राप्ति के लिए समर्पित संघर्ष में बुद्धिजीवियों—खासतौर से छात्र-नौजवानों की भूमिका को रेखांकित करने के बाद याङ मो का यह उपन्यास विराम ले लेता है। परन्तु जिन्दगी चलती रहती है, गाती रहती है और लड़ती रहती है। दरअसल, जैसा कि महान नाटककार और साहित्यिक समीक्षक बर्तोल्त ब्रेष्ट ने कहा है, किसी साहित्य या कला में चित्रित जिन्दगी की तुलना सिर्फ जिन्दगी से की जानी चाहिए। और इस कसौटी पर यह उपन्यास पूरी तरह खरा उतरता है। चीन के तत्कालीन समाज की जिन्दगी क्या है—एक खमीर-क्रिया की उठती हुई बुजबुजाहट, जिसमें कुछ चीजें सड़-गल रही होती हैं, तो कुछ नयी चीजें जन्म ले रही होती हैं; एक धारा इतिहास को आगे की ओर गति दे रही होती है, तो दूसरी इतिहास के पहिए को पीछे की ओर धकेलने की कोशिश कर रही होती है। समाज के इसी यथार्थ में व्यक्ति की पक्षधरता और उसकी भूमिका, उसकी प्रगतिशीलता या प्रतिगामिता को चिन्हित करती है। ठीक इसी सामाजिक यथार्थ की घनीभूत अभिव्यक्ति का दायित्व किसी रचनाकार पर होता है। वह कौन-सा पक्ष ग्रहण करता है, यही वह चीज है जो उसे एक प्रगतिशील या प्रतिगामी साहित्यकार बनाती है। कहना न होगा कि याङ मो की पक्षधरता पहले प्रकार की है जिसके अनुरूप उसने अपनी भूमिका का बखूबी निर्वाह किया है।

हालांकि यह उपन्यास चीनी सामाजिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया है, फिर भी यह भारत की वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में छात्रों, नौजवानों, अध्यापकों और तमाम दूसरे बुद्धिजीवियों को सामाजिक संघर्ष में अपनी भूमिका का निर्वाह करने में आइना दिखाता है। एक तरफ भारतीय पूंजीवादी व्यवस्था पतनशील साम्राज्यवादी और पुनरुत्थानवादी सामंती सांस्कृतिक मूल्यों से साठ-गांठ कर उसका बदबूदार कचरा थोक के भाव समाज में फैला रही है, तो दूसरी तरफ देश के विभिन्न भागों में प्रगतिशील और परिवर्तनकामी छात्र-नौजवान और दूसरे बुद्धिजीवी इन ताकतों के खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं। हालांकि इतिहास को पीछे ले जाने वाली ताकतों के विरुद्ध प्रगति और परिवर्तन की ताकतें आज कमजोर और बिखरी हुई हैं पर इनमें ही नव-सृजन के अंकुर हैं।

आज इतिहास की अग्रगामी धारा को और मजबूत बनाने की जरूरत है। इसके लिए एक व्यापक वैचारिक-सांस्कृतिक आंदोलन की दरकार है जिसमें समाज के सबसे गतिशील, ऊर्जस्वी और स्फूर्त समुदाय—छात्रों और नौजवानों की भूमिका सर्वोपरि है। ऐसे बुद्धिजीवियों के लिए याङ मो का यह उपन्यास मार्गदर्शक सिद्ध होगा।

'तराई का तराना' उपन्यास जल्दी ही
परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ से प्रकाशित होगा।

मक्सिम गोर्की

करोड़पति कैसे होते हैं

करोड़पति लोगों की कल्पना से अक्सर मुझे मानसिक परेशानी होती रही है। यह बात मेरी समझ तथा यकीन में भी नहीं आ पाती थी कि इतनी अधिक दौलत के मालिक किस तरह एक साधारण आदमी की तरह रहते-सहते होंगे।

मैं सोचा करता था कि हर करोड़पति इन्सान के तीन मेदे होते होंगे और उसी अनुपात में उसके मुंह में लगभग डेढ़ सौ दांत भी होंगे। मुझे यकीन था कि एक करोड़पति दिन भर खाता रहता होगा, 6 बजे प्रात: से आधी रात तक, और उसके खाने के सामान बड़े कीमती होते होंगे। दिन भर खाते-खाते शाम के वक्त उसके जबड़े इस तरह थक जाते होंगे कि वह अपने सेवकों को आदेश देता होगा कि वे उसके लिए निवाले चबायें, और फिर वह उनके चबाये हुए निवालों को निगलता होगा, और थक कर जब वह बेजान हो जाता होगा तो उसकी सांसों की रफ्तार तेज हो जाती होगी और वह पसीने से सराबोर हो जाता होगा, तब उसके सेवक उसे बिस्तर पर लिटा देते होंगे।

दूसरी सुबह बिस्तर से उठते ही वह अपने इस थका देने वाले कार्यक्रम के अनुसार अपना दैनिक काम शुरू कर देता होगा, लेकिन इतनी सुख-सुविधा से रहने के पश्चात भी वह अपने मूलधन के ब्याज का 50 प्रतिशत भी अपने ऊपर नहीं खर्च कर पाता होगा। मेरी समझ में ऐसा जीवन मुसीबतों से भरा हुआ होता होगा। लेकिन क्या किया जाये! एक करोड़पति अगर मामूली आदमी की तरह खाये-पीये तो उसके करोड़पति होने का क्या फायदा?

मैं सोचा करता था कि उसके पहनने के कपड़े सोने के तारों से बने होते होंगे। उसके जूते के तल्ले सोने की कीलों से लैस होंगे। मामूली हैट के बजाय वह कीमती हैट पहनता होगा जिसमें हीरे टंके हुए होंगे। निहायत ही कीमती कपड़े से उसका जैकेट तैयार होता होगा जो कम से कम पचास गज लम्बा होगा और उसी लिहाज से उसमें कम से कम तीन सौ सोने के बटन टंके होंगे। खास-खास अवसरों पर वह आठ जैकेट और पतलूनों के आठ जोड़े पहनता होगा, यह पहनावा भोंडा और तकलीफदेह तो जरूर होता होगा, लेकिन क्या किया जाये! एक दौलतमन्द आदमी आम आदमियों का लिबास तो नहीं पहन सकता! करोड़पति की जेब के बारे में मेरा ख्याल था कि वह इतनी बड़ी होती होगी कि उसमें मेम्बरों सहित एसेम्बली की सारी इमारत और जरूरत की दूसरी बहुत सारी चीजें समा सकती होंगी।

अब जबकि मुझे विश्वास हो चला था कि उसके मेदे की गुहा का विस्तार किसी समुद्री जहाज के पेंदे के बराबर होगा तो मेरे लिए यह अनुमान लगाना मुश्किल हो गया कि उसकी टांगें कितनी लम्बी होंगी और उसकी पतलून की लम्बाई, चौड़ाई कितनी होगी। इसी प्रकार मैंने यह फर्ज कर लिया था कि जिस लिहाफ को वह ओढ़ता होगा उसका विस्तार कम से कम एक वर्ग मील तो जरूर होगा। अगर वह तम्बाकू का आदी होगा तो तम्बाकू भी निहायत उम्दा किस्म का होता होगा और एक समय में कम से कम दो पौंड तो जरूर लेता होगा और अगर नास सूंघने की आदत होगी तो कम से कम एक चुटकी में एक पौंड तो जरूर सूंघ लेता होगा। आदमी के पास तो दौलत इसीलिए होती ही है कि उसका अधिक से अधिक इच्छानुसार उपयोग किया जाये।

एक करोड़पति के हाथों की अंगुलियां भी गैर मामूली तौर पर लम्बी होती होंगी और न सिर्फ लम्बी होती होंगी बल्कि कई करतब भी दिखा सकती होंगी। मसलन न्यूयार्क से उसकी आंखें अगर यह देख लें कि सायबेरिया में एक डालर का पौधा उग रहा है तो वह बेहिचक अपना हाथ बढ़ा देता होगा जो बेरंग स्ट्रीट से गुजरता हुआ सायबेरिया पहुंच जाता होगा, और इस तरह अपनी जगह से टस से मस हुए बगैर वह अपने प्रिय पौधे को तोड़ लेता होगा।

इतना कुछ सोचने के बावजूद मेरे दिमाग में यह बात नहीं आ पा रही थी कि उसका सिर कैसा और कितना बड़ा होगा, और अंत में मैंने यह महसूस कर लिया कि उसे सिर की जरूरत नहीं होनी चाहिए। सिर तो मांस और हड्डियों का एक ढेर है जो हर वस्तु से सोना निचोड़ना चाहता है। इस प्रकार एक करोड़पति के सम्बन्ध में मेरी कल्पना कुछ बहुत स्पष्ट नहीं थी। इस बारे में मैं सिर्फ इतना ही सोच और समझ पाया था कि एक करोड़पति के दो लम्बे-लम्बे हाथ होते हैं जिन्होंने सारी दुनिया को अपने घेरे में ले रखा है, और उसे एक अन्धेरी भयानक गुफा

के मुंह पर रख दिया है जो उसे चूस रहा है, कुतर रहा है, चबा रहा है, मानो वह एक गर्म भुना हुआ आलू हो।

एक करोड़पति के सम्बन्ध में ये थे मेरे ख्यालात। लेकिन इन्हीं दिनों जब मेरी मुलाकात सचमुच में एक करोड़पति से हुई तो मैंने देखा कि वह एक साधारण इन्सान से किसी भी हालत से बेहतर नहीं है। अब मेरे आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। मेरे सामने एक व्यक्ति आरामकुर्सी पर बैठा हुआ था। उसका कद लम्बा, चेहरा भावशून्य और सूखा हुआ था। उसके हाथ उतने ही लम्बे थे जितने आम आदमियों के हुआ करते हैं। अपने दोनों हाथों को जिनमें झुर्रियां पड़ चुकी थीं वह बड़े इत्मीनान से अपने पेट पर रखे हुए थे। अपने फूले-फूले गालों की हजामत उसने बड़े हिफाजत से की थी। उसका नीचे का होंठ खुला हुआ था और नकली दांतों का सेट जो सोने का बना हुआ था साफ दिखलाई दे रहा था।

ऊपर का होंठ दांतों से चिपटा हुआ था और बातचीत करते समय बड़ी कठिनाई से हिल-डुल सकता था, उसकी निस्तेज आंखों के ऊपर कोई ऐसी चीज नहीं थी जिसे भौंह कहा जा सके। खोपड़ी की त्वचा साफ थी और बालों से बिलकुल खाली चेहरा लाली लिए हुए निस्तेज और चिकना था, ठीक एक नवजात बच्चे के समान, उसे देखकर यह अनुमान करना कठिन था कि वह अभी-अभी पैदा हुआ है या इस दुनिया से कूच करने की तैयारी कर रहा है। उसका पहनावा भी एक मामूली आदमी के समान था। सोना सिर्फ उसकी अंगूठी, घड़ी और दांतों में था, जिसका सम्मिलित भार अधिक से अधिक आधा पौण्ड होगा। संक्षेप में ये कि उसका हुलिया यूरोप के किसी रईस खानदान के एक बूढ़े सेवक से किसी भी हालत में बेहतर नहीं था। मैंने जिस कमरे में उससे मुलाकात की थी उसकी सजावट और सुन्दरता के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। हां, इतना जरूर कहा जा सकता है कि फर्नीचर साधारण तौर पर लम्बे-चौड़े थे जिन्हें देखकर यह अनुमान होता था कि इसमें गाहेबगाहे हाथी भी आते रहे होंगे।

मेरी आंखों को यह विश्वास नहीं हो पा रहा था कि यह व्यक्ति करोड़पति हो सकता है। इसलिए अपने-आपको विश्वास दिलाने के लिए मैंने उससे पूछा—"क्या आप करोड़पति हैं?"

"जी हां", उसने विश्वास के साथ सिर हिलाते हुए कहा। मुझे उसकी बातों पर विश्वास है, यह दिखाते हुए मैंने उसके झूठ को बेपर्दा करने की कोशिश करते हुए कहा—"आप कितना गोश्त खाते होंगे?"

"मैं गोश्त बिल्कुल नहीं खाता" उसने जवाब दिया—"नारंगी की सिर्फ एक फांक, एक अण्डा, चाय की एक छोटी-सी प्याली, बस यही है मेरी खुराक!"

उसकी बच्चों की-सी भोली आंखों में एक चमक-सी पैदा हुई, मुझे उसकी आंखों में झूठ का कोई भाव नजर नहीं आया, इस पर मुझे हैरत भी हुई और परेशानी भी।

"बहुत खूब," मैंने बातचीत का सिलसिला जारी करते हुए कहा, "कृपया ईमानदारी से बताइये कि आप दिन भर में कितनी बार खाते हैं?" "सिर्फ दो बार", उसने जवाब दिया, "एक बार नाश्ता करता हूं, फिर दिन का खाना खाता हूं, बस इतना मेरे लिए काफी है। खाने में एक प्लेट शोरबा, मुर्गी या बतख का थोड़ा-सा गोश्त, जरा-सी मिठाई, कुछ फल और एक सिगार।"

मेरा आश्चर्य बढ़ता जा रहा था, और वह करुण दृष्टि से मेरी तरफ देखे जा रहा था।

दम लेने के लिए मैं थोड़ी देर रुक गया, उसके बाद मैं उससे यूं बोला—

"अब तक आपने जो कुछ बताया है अगर वह सही है तो उन रुपयों का क्या काम जो आपकी तिजोरी में बंद हैं?"

उसने अपने कंधों को धीरे से हिलाया, जवाब देते समय उसकी आंखों की पुतलियां नाच गईं। उसने कहा—"मैं उन रुपयों को अधिक रुपया पैदा करने के लिए इस्तेमाल करता हूं।"

"किसलिए?" मैंने पूछा, "ताकि और ज्यादा रुपये कमा सकूं।"

"वह किसलिए?" मैंने उत्सुकता से पूछा।

उसने अपनी कोहनियां आरामकुर्सी के हत्थे पर रख लीं, और गर्दन जरा-सी आगे बढ़ा दी, उसके चेहरे पर मुझे एक हल्की-सी उत्सुकता और परेशानी-सी नजर आयी। उसने राजदाराना लहजे से मुझसे पूछा—"क्या तुम पागल हो?"

"क्या आप पागल है?" मैंने भी उसी अन्दाज में उसे जवाब दिया।

बूढ़े ने अपनी गर्दन झुका ली और उसके सुनहले दांतों से धीमी-धीमी आवाज आने लगी। "अजब दिलचस्प आदमी है, ऐसे आदमी से शायद ही मुलाकात हुई हो।" फिर से उसने अपनी गर्दन उठाई और अपने मुंह को कानों तक ले जाते हुए बड़ी खामोशी के साथ मेरा निरीक्षण करना शुरू किया। उसके शांत रवैये से पता चलता था कि उसे अपने नार्मल होने का पूरा विश्वास है। मेरी नजर उसकी टाई पर पड़ी जिसमें पिन से हीरे का छोटा-सा टुकड़ा टंका हुआ था। मैंने दिल में सोचा कि हीरे का यह टुकड़ा अगर एड़ी के नाप का होता तो शायद मैं अन्दाजा कर सकता था कि वास्तव में मैं कहां हूं।

"अच्छा आप अपनी जोत से क्या काम लेते हैं?" मैंने पूछा।

"रुपये बनाता हूं" उसने अपने कंधों को हिलाते हुए कहा। मैंने कहा, "आप रुपये किस तरह कमाते हैं?" "निहायत आसान तरीका है। खेत अपना है। किसान जो कुछ पैदा करता है उसे बाजारों में भेज देता हूं सिर्फ इतना हिसाब रखना पड़ता है कि किसानों को कितना दिया जाये कि वो भूखों न मरने पायें और कम से कम इस हाल में रहें कि अनाज पैदा कर सकें। इसके बाद जितना भी बच रहता है उसे रेलवे का किराया काट कर अपनी जेब में डाल लेता हूं। निहायत ही आसान तरीका है।"

"क्या किसान इससे सन्तुष्ट हो जाते हैं?" "सब नहीं", उसने बच्चों की-सी सादगी से जवाब देते हुए कहा, "कुछ लोग ऐसे हैं कि वो कभी भी सन्तुष्ट नहीं हो सकते। गिले-शिकवे की बात नहीं, वे आदतन ऐसे ही होते हैं।"

"क्या सरकार तुम्हारे कामों में हस्तक्षेप नहीं करती," मैंने अविश्वासपूर्वक उसे देखते हुए पूछा। "सरकार!" उसने इस शब्द को दोहराते हुए चिन्ता प्रदर्शित करते हुए अपनी अंगुलियां माथे पर फेरीं। उसने वार्तालाप इस तरह छोड़ दिया जैसे एकाएक उसके दिमाग में कोई बात आ गई हो। "अच्छा तुम्हारा मतलब उन लोगों से है जो वाशिंगटन में रहते हैं। नहीं, वो मुझे परेशान नहीं करते, वो तो बड़े अच्छे नौजवान है। उनमें से कई तो मेरे क्लब के मेम्बर हैं—मुलाकातें बहुत कम होती हैं, लिहाजा अक्सर उन्हें भूल जाता हूं।

नहीं-नहीं, वो मेरे कामों में जरा भी हस्तक्षेप नहीं करते।''

उसने आश्चर्य से मेरी ओर देखते हुए पूछा, ''क्या तुम्हारे कहने का मतलब यह है कि कुछ हुकूमतें ऐसी भी हैं जो लोगों को रुपया कमाने से दूर रखना चाहती हैं?'' इस सवाल पर मुझे अपने भोलेपन का अहसास हुआ और साथ-साथ उसकी अकलमंदी का भी।

''नहीं!'' मैंने नर्मी से कहा, ''मेरा इरादा ये हरगिज नहीं था। मैं तो सिर्फ ये कहना चाहता था कि सरकार का ये कर्तव्य होना चाहिए कि वो दिन-दहाड़े डकैती से लोगों को दूर रखें।''

''ओ हो!'' उसने एतराज करते हुए कहा, ''ये तो सरासर ज्यादती है। यहां ऐसा नहीं होता। सरकार को क्या हक है कि वो हमारे निजी मामलों में हस्तक्षेप करे।'' उसकी बचकानी अकलमंदी देखकर मेरी जिज्ञासा बढ़ने लगी, इसलिए बड़ी नम्रता से मैंने पूछा ''जब एक व्यक्ति बहुत से लोगों का तबाह कर रहा हो तो क्या उसे निजी मामला समझना चाहिए?''

''तबाह?'' उसने अपने दीदों को फैलाते हुए कहा, ''अरे तबाही तो तब होगी जब मजदूरी बढ़ा दी जाये या किसी तरह हड़ताल हो जाये। यहां तो ये हालत है कि लोग अपने-अपने कस्बे और बस्तियां छोड़ कर हमारी तरफ चले आ रहे हैं। नये लोगों के आने का तांता बंधा हुआ है। उनके आने से मजदूरी की दर भी कम होती जा रही है। और हड़तालियों की जगह भी भरती जा रही है। मुल्क में जरूरतमंदों की तादाद जब ज्यादा हो वह आप ही आप कम मजदूरी पर काम करने लगेंगे और ज्यादा चीजें खरीदेंगे। इस तरह मामला निहायत खूबी के साथ सुलझ जायेगा।'' उसमें जिन्दगी का थोड़ा उबाल जाहिर हुआ। पहली नजर में मैंने कुछ ऐसा महसूस किया था कि वो बच्चे और बूढ़े के बीच की कोई चीज है। लेकिन अब ये तुलना बहुत कम हो चुकी थी।

उसकी पतली-पतली अंगुलियां और उसकी साफ आवाज मेरे कानों में आने लगी। ''हुकूमत बड़ा दिलचस्प सवाल है। एक अच्छी हुकूमत का होना जरूरी है। ऐसी हुकूमत जो हमारी जरूरियात का ख्याल रख सके, वो देश में केवल उतने आदमियों को रहने की इजाजत दे जो मेरे जरूरत के अनुसार हों ताकि मैं जो कुछ चाहूं उन्हें बेच सकूं। मजदूरों की तादाद भी इतनी हो कि मैं अपने कारोबार में किसी प्रकार की दिक्कत न महसूस करूं। बस इतना काफी है।''

मैं उठने लगा। ''ओ हो, तुम जा रहे हो?'' उसने पूछा।

''हां'', मैंने जवाब दिया, ''लेकिन इसके पहले कि मैं आपसे अलग होने की इजाजत चाहूं, मुझे ये बता दीजिए कि करोड़पति बनने का क्या अर्थ है?''

अबकी जवाब देने के बजाय उसने हिचकियां लेनी शुरू कर दीं। अपनी टांगों को हिलाने लगा। शायद वो इसी अंदाज में हंसा करता था। अपनी सांसों को मजबूत करते हुए उसने कहा, ''ये तो सिर्फ एक आदत है।''

मैंने फौरन पूछा, ''आदत क्या है?''

''करोड़पति बनना, यह तो एक आदत है।''

कुछ क्षण सोचते रहने के बाद मैंने उससे एक आखिरी सवाल किया।

''तो आपका ख्याल है कि खानाबदोश, अफीमची और करोड़पति एक ही कबीले के लोग हैं।''

मेरे सवाल से उसे जरूर रंज पहुंचा होगा क्योंकि उसकी आंखें गोल हो चुकी थीं, जिनमें उनकी पुतली का सब्ज रंग झांकने लगा था।

''शायद तुम्हारा पालन-पोषण सभ्य ढंग से नहीं हुआ है।'' उसने भिन्ना कर कहा।

''नमस्कार!'' मैंने रवाना होते हुए कहा। बड़ी नम्रता से वो मुझे सीढ़ियों तक पहुंचाने आया और कुछ देर तक सीढ़ियों पर खड़ा अपने जूतों को घूरता रहा। उसके मकान के सामने एक लान था, जिसमें घनी घास उगी हुई थी जिसे बड़ी सफाई के साथ कांट-छांट कर बराबर किया गया था।

मैं इसी लान से बड़ी बेचैनी के साथ गुजर रहा था और दिल ही दिल में सोच रहा था कि अब दुबारा इस व्यक्ति से हरगिज नहीं मिलूंगा। इसी समय मेरे पीछे से कानों में एक आवाज गूंजी, ''हैलो!''

मैंने मुड़कर देखा, वो सीढ़ियों पर खड़ा मुझे गौर से देख रहा है। ''क्या तुम्हारे देश में यानी यूरोप में जरूरत से ज्यादा बादशाह हैं?'' उसने राजदाराना लहजे में मुझसे पूछा।

''अगर आप मुझसे पूछते हैं तो साफ-साफ कहता हूं कि हम लोगों को किसी बादशाह की बिलकुल जरूरत नहीं।'' मैंने जवाब दिया।

उसने मुड़कर देखा और फिर कहने लगा कि मैं बादशाहों का एक जोड़ा किराये पर अपने लिए मंगवाना चाहता हूं। तुम्हारा क्या ख्याल है।''

''लेकिन किसलिए?''

''दिल बहलाने के लिए मैं उन्हें अपने यहां लाता और उन्हें हुक्म देता कि मेरे सामने बाक्सिंग करें।'' उसने अंगुलियों से मैदान की तरफ इशारा करते हुए कहा और फिर कहने लगा कि ''एक डेढ़ बजे तक उनसे बाक्सिंग करवाता। खाना खाने के बाद आधे घंटे का ये बहुत अच्छा मनोरंजन रहेगा।''

मैंने महसूस किया कि उसका इरादा पक्का है और इसे पूरा करने के लिए सब कुछ कर सकता है।

''लेकिन इस काम के लिए बादशाहों की क्या जरूरत?''

मैंने पूछा—''क्योंकि यहां आज तक किसी को ये बात नहीं सूझी।'' उसने अपने इरादे का निचोड़ पेश करते हुए कहा।

मैंने कहा—''बादशाह तो खुद इस बात के आदी हैं कि दूसरे उनके लिए लड़ा करें।'' ये कहकर मैं आगे बढ़ा।

''हैलो!'' उसने फिर मुझे आवाज दी।

मैं फिर रुक गया। वो अभी तक अपनी जेबों में हाथ डाले वहीं खड़ा था। उसकी आंखें और चेहरे जैसे एक स्वप्न सा देख रही थीं।

''अब क्या?'' मैंने पूछा।

उसने अपने होंठ इस तरह हिलाये जैसे कुछ चबा रहा हो। उसके बाद राजदाराना लहजे में कहने लगा—''तुम्हारा क्या अंदाज है, अगर दो बादशाहों से रोजाना आधे घण्टे तीन महीने तक बाक्सिंग करायी जाये तो क्या खर्च होगा? ओह! बादशाहों की बाक्सिंग! बड़ा मजा आयेगा!'' वह बच्चों की तरह दाहिने हाथ की मुट्ठी को बायीं हथेली पर पटकता सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ वापस कमरे में लौट गया।

मैं फिर एक मिनट भी वहां नहीं रुका और तेजी से लान पार करता हुआ फाटक से बाहर आ गया।

●

■ बेताल पचीसी

राजन्! न्याय करने वालों के बारे में न्याय कौन करेगा?

जब अदालती आदेश से शहर उजाड़ा जा रहा था, तब विक्रम बेताल को कंधे पर लादे शहर में दाखिल हुआ, बेताल की जिद थी कि देश की राजधानी दिल्ली को करीब से देखा जाये। इसी दौरान सुप्रीम कोर्ट का फरमान आया था कि रिहायशी इलाकों में चल रही फैक्ट्रियों को बन्द कर दिया जाये। लाखों लोगों के भाग्य का फैसला हो चुका था। विक्रम बेताल के साथ दिल्ली के व्यस्ततम चौराहे आई.टी.ओ. पर खड़ा था। गाड़ियों के धुएं मे आंखें जल रहीं थीं। दम घुट रहा था। शहर में कारखाने बन्द होने की चर्चा जोरों पर थी। बेताल सुप्रीम कोर्ट के कारखानाबन्दी के आदेश के निहितार्थ और फलितार्थ को समझने की कोशिश कर रहा था। उसके मन में तमाम सवाल उमड़-घुमड़ रहे थे। जब बेताल से रहा न गया तो उसने विक्रम से पूछना ही उचित समझा।

बेताल : न्याय करने का अधिकार किसको है? क्या अन्याय को न्याय का जामा पहनाया जा सकता है? क्या आम जन को यह अधिकार नहीं होना चाहिए कि न्याय करने वालों के भाग्य के बारे में वह न्याय करे?

विक्रम : तुम हमेशा पहेलियां बुझाते हो, न्याय और अन्याय की परिभाषाओं को जानने के पीछे तुम्हारा मकसद क्या है?

बेताल : राजन, मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या लाखों लोगों को घर-परिवार सहित दिल्ली से बाहर सिर्फ इसलिए ढकल दिया जाये कि वे प्रदूषण फैलाने वाली फैक्ट्री में काम करते हैं। क्या इन लोगों का कसूर यह है कि रोजगार की तलाश में भटकते हुए अपनी जगह-जमीन से उजड़कर ये लोग दिल्ली आ गये? जब तक यहां इनकी जरूरत थी तो इनका खून निचोड़ा गया। अब कहा जा रहा है कि ये तो घुमन्तू प्रवृत्ति के लोग हैं कहीं भी काम कर लेंगे। अब इन्हें यहां से खदेड़ा जा रहा है।

विक्रम : राजकाज चलाने में कुछ अलोकप्रिय फैसले तो लेने ही पड़ते हैं। प्रदूषण कम करने के लिए यह फैसला लिया गया है कि 'नॉन कन्फार्मिंग' क्षेत्रों से कारखानों को हटाया जाये।

बेताल : राजन, तुम्हारा यह घिसा-पिटा बचकाना तर्क है। यदि तुम्हारे प्रदूषण वाले तर्क से ही सोचें तो सबसे पहले तो तुम्हारे इन अमीरजादों की गाड़ियों को शहर से बाहर कर दिया जाना चाहिए जो सबसे ज्यादा प्रदूषण का कारण बनी हुई हैं। अपनी एयाशी और शानोशौकत के लिए इन्होंने शहर को नरक बना दिया है। तुम्हारा न्यायतंत्र इस सम्बन्ध में क्यों खामोश है?

विक्रम : न्यायालय का फैसला उचित है। तुम एक ही पक्ष देख रहे हो।

बेताल : हां, मैं उस पक्ष को देख रहा हूं जिसे न तुम और न तुम्हारा न्यायालय देखते हैं। यदि प्रदूषण के लिए कारखाने में काम करने वाला मजदूर जिम्मेदार नहीं है तो उसे इसका दण्ड क्यों दिया जा रहा है? क्या तुम्हारी न्यायपालिका ने उस मजदूर को रोजगार की सुरक्षा की गारण्टी दी है, जो कारखानाबन्दी का शिकार हुआ है?

विक्रम : तुम्हारे मजदूर ही नहीं बल्कि कारखानेदार भी तो इस निर्णय से प्रभावित हुए हैं?

बेताल : कारखानेदारों का दर्द तुम्हारे सीने में बड़ी हूक पैदा कर रहा है क्यों राजन्? 'जो बोओगे, सो काटोगे' और फिर बड़ी मछली, छोटी मछली को तो खायेगी ही।

विक्रम : तुम फिर पहेलियां बुझाने लगे।

बेताल : जिन आर्थिक सुधारों की तुम वकालत करते हो राजन्, उसमें यही सब होना था, जो हो रहा है, प्रदूषण तो बहाना है। छोटी पूंजी को बड़ी पूंजी के लिए रास्ता छोड़ना ही होगा। फिर भी तुम्हारे ये कारखानेदार, जिन्होंने मजदूरों के खून की आखिरी बूंद भी निचोड़कर अपनी तिजोरी भरी है, बर्बाद नहीं हो जायेंगे। ये मजदूरों की तरह रोजी-रोटी के लिए सड़कों पर मारे-मारे नहीं फिरेंगे। इन्हें तो सरकार से मुआवजा भी मिल जायेगा और अपना धंधा दूसरी जगह चलाने के लिए सहूलियतें भी।

विक्रम : आखिर तुम चाहते क्या हो? पर्यावरण को ऐसे ही तबाह होने दिया जाये?

बेताल: नहीं। मैं जो कहना चाहता हूं, वह तुम्हारे लिए समझना मुश्किल है क्योंकि तुम तो चांदी की चम्मच मुंह में लेकर पैदा हुए हो। तुम्हें यह नहीं दिखाई पड़ रहा है कि पर्यावरण को तबाह करने वाले ही सबसे ज्यादा 'पर्यावरण बचाओ' का ढोल पीट रहे हैं। अमेरिका और विकसित देशों का गैंग तीसरी दुनिया के देशों को पर्यावरण तबाही का जिम्मेदार ठहराता है और तीसरी दुनिया के मुनाफाखोर जिम्मेदारी थोपते हैं अपने-अपने देश की आम जनता पर। साथ ही अपने कुकृत्यों पर पर्दा डालने के लिए पर्यावरण सुधार की बातें करते हैं।

विक्रम : तुम कुछ हवाई बातें कर रहे हो।

बेताल : हवाई? ओजोन परत में छेद का जिम्मेदार कौन है? किसके कारखाने, किसके संयंत्र, किसकी गाड़ियां प्रदूषण फैलाती हैं? कौन जंगलों को नष्ट कर रहा है? मुनाफे की हवस पर्यावरण का नाश कर रही है। अपनी तिजोरियों को भरने के लिए मुनाफाखोर कुछ भी करने को तैयार रहता है। ये कफनखसोट अपने मुनाफे के लिए इंसानियत को तबाह करने पर तुले हैं, इनसे पर्यावरण कैसे बच सकता है? और वह भी तब, जब आज पूरे राजकाज, समाज की कमान इन्हीं परजीवियों के हाथों में है। ये जैसा चाहते हैं वैसे नियम कानून बनाते हैं, आर्थिक नीति, शिक्षा नीति, पर्यावरण नीति सभी तो इनके हिसाब से बनती हैं।

विक्रम : तुम कहना क्या चाहते हो कि हमारी न्यायपालिका भी इन्हीं के हितों की रक्षा कर रही है?

बेताल : हां, बिलकुल।

विक्रम : तो तुम और तुम्हारे मजदूर अपनी दुनिया अलग क्यों नहीं बसा लेते?

बेताल : विक्रम तुमने स्पार्टकस का नाम सुना है? क्या तुमने रोम के गुलामों के विद्रोह की कहानी सुनी है? तुमने जरूर सुनी होगी वह कहानी जब गुलाम ने पहली बार कहा था कि मैं इंसान हूं। इंसानियत के संघर्ष के इतिहास से भी तुम परिचित हो। मैं जानता हूं - तुम विद्वान हो। गुलामों के विद्रोह से लेकर

(शेष पृष्ठ 48 पर)

■ विविधा

अगर आपकी जींस बोल सकती...

शिशिर

दोस्तो, क्या आपने कभी सोचा है कि जो कपड़े पहनकर आप रोज कालेज जाते हैं, उन्हें कौन बनाता है? क्या आपको मालूम है कि आपकी 'धांसू' जींस की सिलाई 12-13 साल के बच्चों ने की है? क्या आपको अंदाजा है कि आप स्मार्ट बनकर घूम सकें, इसके लिए कितने बचपनों की कुर्बानी दी गई है? अगर आपकी जींस बोल सकती तो आपको यह सब बताती।

क्या आपने अपनी जींस में आती बच्चों के खून और आंसुओं की गंध महसूस नहीं की है? लेकिन वह गंध आप तक कैसे पहुंचेगी? आंसू और खून तो सिक्कों में ढलकर बड़ी-बड़ी कम्पनियों के बैंक खातों में जमा हो चुके हैं।

'भूमंडलीकरण के मौजूदा दौर में कपड़ा उद्योग का नेटवर्क भी भूमंडलीय हो चुका है। अमेरिकी गारमेंट कम्पनियों में अमरीका में 8 लाख से ज्यादा मजदूर काम करते हैं जबकि तीसरी दुनिया के गरीब देशों में सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से 5 लाख मजदूर इन कम्पनियों के लिए काम करते हैं। सिले-सिलाये वस्त्रों की फैक्टरियों में बड़ी संख्या में मजदूरों की जरूरत होती है क्योंकि बड़ी-बड़ी आटोमेटिक मशीनें या कम्प्यूटर आपकी जींस और टी-शर्ट नहीं सिल सकते। इसके लिए जरूरत पड़ती है औरतों और बच्चों की। बड़े-बड़े शेडों में ये सिलाई मशीनों पर झुके हुए 10-10, 12-12 घंटे काम करते रहते हैं। कोई कटिंग करता है, कोई सिलता है, कोई बटन लगाता है, कोई पूरे दिन खड़े रहकर धागे काटता रहता है, कोई काज बनाता है तो कोई इस्त्री करता है। कई हाथों से गुजरकर एक जींस या शर्ट तैयार होती है। चमकदार शोरूमों में कई सौ रुपये में बिकने वाले इन कपड़ों की सिलाई के लिए मुश्किल से 4-5 रुपये प्रति पीस की मजदूरी मिलती है। बड़ी कम्पनियां मुनाफे की हवस में सस्ते से सस्ता श्रम ढूंढने में लगी रहती हैं। नतीजतन चाहे ताइवानी कम्पनी गैप हो, अमेरिकी कम्पनी केथी ली, लेवी, हैगर, वालमार्ट या रीबॉक हो, जर्मन कम्पनी एडिडास या फिर फ्रेंच कम्पनी पियर कार्डिन हो—इनकी अधिकांश फैक्टरियां अलसल्वाडोर, मेक्सिको, ब्राजील, ग्वाटेमाला, कोलम्बिया, हाइती, होण्डुरास, बंगलादेश और भारत में हैं।

अगर आपकी जींस बोल सकती तो वह आपको बताती कि इन फैक्टरियों में जिस बर्बरता के साथ 15-16 साल की बच्चियों और महिलाओं का शोषण-उत्पीड़न किया जाता है वह रोमन और यूनानी साम्राज्य के गुलामों की याद दिला देता है। अमेरिका में खूब बिकने वाले कैथी ली कम्पनी के कपड़ों को लातिनी अमेरिका में जानलेवा हालात में काम करने वाले बच्चे बनाते हैं। अंधेरी घुटनभरी फैक्टरियों में पसीने से नहाये हुए ये बच्चे 18 से 20 घंटे तक काम करते हैं जहां उन्हें साफ पानी तक पीने को नहीं मिलता और न ही वे दिन में दो बार से ज्यादा टायलेट जा सकते हैं। अकसर काम करते-करते 13-15 साल के ये बच्चे बेहोश होकर गिर जाते हैं। कम्पनियों के ठेकेदार सस्ते से सस्ता श्रम को बेरहमी से निचोड़ लेने के लिए मजबूर-बेबस लोगों की ताक में लगे रहते हैं। थोड़ा बड़ा होते ही इन बच्चों को निकाल बाहर किया जाता है।

मजदूरों के एक क्रान्तिकारी अखबार 'बिगुल' की एक रिपोर्ट के अनुसार नोएडा के एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन में एक बड़ी गारमेंट कम्पनी की फैक्टरी में काम करने वाली एक मजदूर ने बताया कि उसे रोज 10-11 घंटे काम करने के बदले महीने में 900 रुपये मिलते हैं। हफ्ते की छुट्टी तक नहीं मिलती है।

इसी तरह अमेरिका से प्रकाशित 'रिवोल्यूशनरी वर्कर' अखबार की एक रिपोर्ट में वेंडी नाम की 15 वर्षीय मजदूर लड़की ने बताया कि वह कैथी ली कम्पनी की फैक्टरी में हर रोज 13 घंटे काम करती है जिसके लिए उसे 21.86 डालर प्रति हफ्ता मिलता है। ओवरटाइम करने से मना करने पर उस पर यौन शोषण और पिटाई की धमकी दी जाती है। उसे बीमार होने पर भी छुट्टी नहीं दी जाती और गैरहाजिरी के पैसे कट जाते हैं।

यदि आपकी स्मार्टनेस में चार चांद लगाने वाली टी-शर्ट बोल सकती तो वह आपको बताती कि ये तो मामूली उदाहरण हैं। मशहूर से मशहूर लेबल वाली और अरबों डालर विज्ञापनों में फूंक डालने वाली कम्पनियां जोंकों की तरह बच्चों और औरतों का खून चूसकर अपना मुनाफा पैदा करती हैं।

अगर आप अपनी इम्पोर्टेड कोरियन जींस की आवाज सुन पाते तो वह बताती कि एक कोरियाई गारमेंट फैक्टरी में 15 घंटे की सामान्य शिफ्टें होती हैं (जो 14-14 साल की बच्चियों को भी करनी पड़ती हैं) और हर शनिवार को मजदूर 7.30 बजे सुबह फैक्टरी आते हैं और रविवार को सुबह 6 बजे बाहर निकलते हैं। यानी साढ़े बाइस घंटे की शिफ्ट।

यदि आपको अपनी जींस की कही बातों

(शेष पृष्ठ 17 पर)

विज्ञापनों ने पैदा किया जुनून
जींस के लिए हत्या, जूतों के लिए आत्महत्या

बहुराष्ट्रीय कम्पनियां सिर्फ मजदूरों का खून ही नहीं पीतीं, अपने नये-नये फैशनेबुल कपड़ों और जूतों को बेचने के लिए वह विज्ञापनों के जरिए ऐसा दिमागी बुखार पैदा करती हैं कि लोग उन्हें पाने के लिए कुछ भी करने पर आमादा हो जाते हैं।

पिछले दिनों लंदन में 18 वर्षीय एक नौजवान 150 फीट ऊंचे पुल पर चढ़ गया। वह कह रहा था कि अगर उसे रीबॉक कम्पनी के नये मॉडल के शानदार स्पोर्ट्स शूज़ नहीं दिये गये तो वह नदी में कूदकर जान दे देगा। घंटों चले नाटक के बाद उसे जूते लाकर दिये गये जिन्हें पहनकर ही महाशय नीचे उतरे।

नये-नये माडलों-फैशनों के लिए पागलपन (क्रेज) पैदा करने के वास्ते विज्ञापनों पर अरबों डालर बहाये जाते हैं। फिल्मों से लेकर खेलों की दुनिया के सितारों को करोड़ों डालर में खरीदा जाता है। पैसे वालों के लाडले इन्हें पहनकर अपने वैभव का उद्दण्ड नुमाइश करते घूमते हैं और ऐसे "स्टेटस सिम्बलों" के पीछे पागल मध्यवर्ग अपना पेट काटकर इन्हें खरीदता है। इन कपड़ों-जूतों के लिए समाज में ऐसी हवस पैदा की जाती है कि लोग इन्हें पाने के लिए अपराधी तक बन जाते हैं। गुजरे वर्षों में अमरीका में सिर्फ महंगी जींस या जूते पाने के लिए कई लोगों की हत्या कर दी गई।

जो समाज पतलून और जूते जैसी चीजों के लिए हत्या और आत्महत्या तक पहुंचा देने वाली संस्कृति रच रहा हो, उसकी उम्र ज्यादा लम्बी नहीं हो सकती।

बेताल पचीसी

(पृष्ठ 40 का शेष)

अब तक इंसान अन्याय और जुल्म के खिलाफ लड़ता रहा है। यह लड़ाई तब तक जारी रहेगी, जब तक इंसान द्वारा इंसान को गुलाम बनाने का सिलसिला चलेगा। आज भी यह लड़ाई चल रही है। गुलामों की सेनायें भी युद्ध हारती हैं, हारे हुए युद्धों से सबक लेती हैं, आगे के युद्धों की तैयारी में जुटती हैं। जिन मजदूरों को तुम्हारा "कल्याणकारी राज्य" उजाड़ रहा है, जिन छात्रों-नौजवानों की जिन्दगी को बरबाद कर रहा है, उनको और उनकी कौम को आप किसी दूसरे ग्रह में नहीं खदेड़ सकते, वे यहीं रहेंगे तुम्हारे संगमरमर के महलों के इर्दगिर्द। तुम्हें तुम्हारे पापों की सजा देने के लिए, और एक नये समाज के निर्माण के लिए जिसके केन्द्र में पैसा नहीं, इंसान हो।

विक्रम (झुंझलाकर) : मैं तुमसे बहस नहीं करना चाहता।

बेताल : राजन्। तुम्हारे पास मेरी बातों के जवाब नहीं हैं।

यह कहकर बेताल नजदीक आती 'ब्लू लाइन' बस में चढ़ गया और भीड़ में खो गया। ●

आह्वान यहां से प्राप्त करें

उत्तर प्रदेश ■ जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर** ■ विजय इन्फार्मेशन सेण्टर, कचहरी बस स्टेशन, **गोरखपुर** ■ विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, बड़हलगंज, **गोरखपुर** ■ जनचेतना स्टाल, कॉफी हाउस के पास, हजरतगंज, **लखनऊ** (शाम 5 से 8.30 तक) ■ ओमप्रकाश, 69, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपरमिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ** ■ राहुल फाउण्डेशन, 3/274 विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, **लखनऊ** ■ विमल कुमार, बुक स्टाल, नीलगिरि काम्प्लेक्स के सामने, इंदिरानगर, **लखनऊ** ■ कृष्णगोविन्द सिंह, बी-18, बिड़ला छात्रावास, बी.एच.यू., **वाराणसी** ■ प्रोग्रेसिव बुक सेण्टर, विश्वनाथ मन्दिर गेट, बी.एच.यू. परिसर, **वाराणसी** ■ शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूधनाथ, जनगण होप्यो सेवासदन, पर्यादपुर, **मऊ** ■ रविन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, **पन्तनगर** (ऊधमसिंहनगर) ■ अविनाश श्रीवास्तव, 73, पन्त भवन, **पन्तनगर विश्वविद्यालय, ऊधमसिंहनगर** ■ रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, **रुद्रपुर** (ऊधमसिंहनगर) ■ प्रो. प्यारेलाल, 139, फूलबाग कालोनी, **पन्तनगर** ■ राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, **सोनभद्र** ■ डी. के. सचान, कृषि विज्ञान केन्द्र, 243, विकास भवन, न्यू कलक्ट्रेट, **गाजियाबाद**

दिल्ली ■ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-फेज एक, **दिल्ली-91** ■ अभिनव सिन्हा, बी.ए.ऑनर्स-II (इतिहास), रामजस कालेज, **दिल्ली** वि.वि. ■ गीता बुक सेंटर, **जे.एन.यू.** ■ बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, **मंडी हाउस** ■ पत्रिका मंडप, कला संकाय, **दिल्ली विश्वविद्यालय** ■ नई किरण पुस्तक भण्डार, 56, हरकेश नगर, **ओखला, दिल्ली**

हरियाणा ■ नरभिंडर सिंह, शहीद भगतसिंह विचार मंच, हरियाणा, प्रा./पो.**संतनगर**, जिला **सिरसा**

बिहार ■ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, **पटना** ■ समकालीन प्रकाशन (प्रा. लि.), पुस्तक विक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, **पटना**

बंगाल ■ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कलकत्ता** ■ जनार्दन थापा, लुकसान बाजार, पो. करेन, जि. **जलपाईगुड़ी** ■ सी.पी. सरोज, सनराइज स्कूल, छोटा अदलपुर, सेमलबाड़ी, **दार्जीलिंग** ■ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मन्दिर, प्रधाननगर, **सिलीगुड़ी**

मध्य प्रदेश ■ चिंचोलकर बुक हाउस बस स्टैण्ड, जगदलपुर, बस्तर ■ विकल्प सांस्कृतिक मोर्चा, 22 स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसेल चौक, जबलपुर

महाराष्ट्र ■ पीपुल्स बुक हाउस, 15, कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, **मुम्बई**

राजस्थान ■ कविता, द्वारा योगेश कुमार, 94, मोहननगर (त्रिवेणीनगर), गोपालपुरा बाईपास, जयपुर ■ सुभाष शर्मा, 221, उत्तरी सुन्दरवास, गंगा फ्लोर मिल, **उदयपुर**

असम ■ शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, **तिनसुकिया**

नेपाल ■ विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवण पथ, बुटवल, **रुपनदेई**

S SEC C

मुगलसराय का गौरव

S SEC C

स्टूडेन्ट एजुकेशनल सेन्टर

और स्टूडेन्ट कम्प्यूटर्स

मैनीताली (पुलिस चौकी के पास), मुगलसराय

कक्षा 8 से 12 तक

(यू.पी. बोर्ड एवं सी.बी.एस.सी. बोर्ड) एवं

कम्प्यूटर शिक्षण की एकमात्र संस्था

(डी.टी.पी., डी.सी.ए., डिजायनिंग एवं हर प्रकार के जॉब वर्क)

1990 से हर वर्ष 100 प्रतिशत रिजल्ट देने वाला एकमात्र सेंटर ● 60 प्रतिशत से अधिक छात्र प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण ● कमजोर आय वर्ग के छात्रों को विशेष छूट ● विज्ञान की आधुनिक प्रयोगशाला छात्रों के लिए उपलब्ध

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता बेहतर किताबों से होकर जाता है!

परिकल्पना प्रकाशन की पुस्तकें

मां
मक्सिम गोर्की का अमर उपन्यास
पृष्ठ 448 • 70 रुपये

शहीदेआजम की जेल नोटबुक
एक महान विचारयात्रा का दुर्लभ साक्ष्य • भारतीय इतिहास का एक दुर्लभ दस्तावेज • भगतसिंह की शहादत के 68 वर्ष बाद हिन्दी में पहली बार प्रकाशित ❑ पृष्ठ 200 • 50 रुपये

विचारों की सान पर
भगतसिंह और उनके साथियों के चुने हुए दस्तावेज़, पत्र और वक्तव्य ❑ पृष्ठ 104 • 20 रुपये

माओ त्से-तुङ की कविताएं
राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियों के साथ
अनुवाद एवं सम्पादन : ***सत्यव्रत*** ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

चिरस्मरणीय
कय्यूर के किसान आन्दोलन के शहीदों पर लिखा **निरंजन** का प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास, अनुवाद : ***रामकृष्ण पाण्डेय*** ❑ पृष्ठ 168 • 35 रुपये

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट : इकहत्तर कविताएं और तीस छोटी कहानियां
मूल जर्मन से अनुवाद : ***मोहन थपलियाल*** ❑ पृष्ठ 148 • 60 रुपये

लहू है कि तब भी गाता है
(**पाश** के सभी संग्रहों से चयनित प्रतिनिधि कविताओं का संकलन)
संपादक : ***चमनलाल एवं कात्यायनी*** ❑ पृष्ठ 176 • 75 रुपये

चुनी हुई कहानियां : मक्सिम गोर्की (पहला खण्ड)
पृष्ठ 168 • 35 रुपये

पांच कहानियां : पुश्किन ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

दो अमर कहानियां : लू शुन ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

श्रेष्ठ कहानियां : प्रेमचंद ❑ पृष्ठ 96 • 20 रुपये

तीन कहानियां : गोगोल ❑ पृष्ठ 144 • 30 रुपये

दुर्ग द्वार पर दस्तक
कात्यायनी ❑ पृष्ठ 152 • 50 रुपये (द्वितीय संशोधित संस्करण)

माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य
रेमण्ड लोट्टा के दो महत्वपूर्ण लम्बे लेखों का संकलन
पृष्ठ 104 • 25 रुपये

समर तो शेष है...
इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का अनन्य संकलन ❑ पृष्ठ 144 • 35 रु. रुपये

क्रान्ति का विज्ञान
लेनी वुल्फ ❑ पृष्ठ 36 • 10 रुपये

अब इंसाफ होने वाला है
उर्दू की प्रगतिशील कहानियों का प्रतिनिधि संकलन
संपादक : ***शकील सिद्दीकी*** ❑ पृष्ठ 248 • 75 रुपये

मध्यवर्ग का शोकगीत
हान्स माग्नुस एंत्सेंसबर्गर की कविताएं
सम्पादन एवं अनुवाद : ***सुरेश सलिल*** ❑ पृष्ठ 72 • 25 रुपये

राहुल फाउण्डेशन के प्रकाशन

माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण	35 रुपये
Quotations from Mao Tse-Tung	40 रुपये
पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन —*लेनिन*	15 रुपये
द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद —*वी. अदोरात्सकी*	15 रुपये
राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त (दो खण्डों में) (दि शंघाई टेक्स्टबुक आफ पोलिटिकल इकॉनमी) प्रत्येक खण्ड	: 60 रुपये
कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र —*कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स*	10 रुपये
बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में —*चाङ चुन-चियाओ*	3 रुपये
मई दिवस का इतिहास —*अलेक्जेण्डर ट्रैक्टनबर्ग*	3 रुपये
अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन —*एल्बर्ट रीस विलियम्स*	75 रुपये

दायित्वबोध पुस्तिका श्रृंखला

अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं —*दीपायन बोस*	10 रुपये
समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति —*शशिप्रकाश*	12 रुपये
क्यों माओवाद —*शशिप्रकाश*	10 रुपये

बिगुल पुस्तिका श्रृंखला

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा —*वी.आई. लेनिन*	5 रुपये
मकड़ा और मक्खी —*विल्हेल्म लीब्कनेख्त*	2 रुपये
ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीके —*सर्जी रोस्तोवस्की*	2 रुपये

राहुल फाउण्डेशन एवं परिकल्पना प्रकाशन की पुस्तकों के मुख्य वितरक :

जनचेतना
डी-68, निरालानगर,
लखनऊ-226 020 ✆ (0522) 788932
(व्यक्तिगत प्रतियों के लिए 12 रुपए रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर ड्राफ्ट या एम.ओ. भेजें)

खत्म करो पूंजी का राज!
लड़ो, बनाओ लोक स्वराज!

गांव-गांव में अलख जगाकर
विदेशी लूट मिटाएंगे
देशी कफनखसोटों को भी
लड़कर मार भगाएंगे
कसम शहीदों की भारत में
लोक स्वराज बनाएंगे

"...हम मानते हैं कि नये सिरे से सब कुछ शुरू करना होगा। मेहनतकश जनता के राज्य और समतामूलक समाज के निर्माण की परियोजनाओं को पुनर्जीवित करना होगा। पूरी दुनिया के पैमाने पर, पिछली सदी के आखिरी चौथाई हिस्से के दौरान मेहनतकशों के इंकलाबों का कारवां रुक-सा गया है और भटका और बिखरा भी है। पूंजीवादी लूट और हुकूमत के तौर-तरीकों में भी अहम बदलाव आये हैं। उन्हें समझना होगा और नई क्रान्तियों की राह निकालनी होगी। यह कठिन है पर असम्भव नहीं। हर नया काम कठिन लगता है। हर नई शुरुआत मजबूत संकल्पों की मांग करती है। इतिहास के हजारों वर्षों के सफर का यह सबक है और पूंजीवादी लूटतंत्र के असाध्य संकटों और लाइलाज बीमारियों को देखते हुए यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि पराजय झेलने के बाद क्रान्तियां फिर से परवान चढ़ेंगी। यह सदी नई, फैसलाकुन क्रान्तियों की सदी होगी।

यह हमारा दृढ़ विश्वास है और इस विश्वास के पर्याप्त कारण हैं कि भारत की मेहनतकश जनता भी इस नये विश्व-ऐतिहासिक महासमर में पीछे नहीं रहेगी, बल्कि अगली कतारों में रहेगी। 85 फीसदी लोगों के दुखों और बर्बादियों के सागर में 15 फीसदी लोगों के समृद्धि के टापू और उन पर खड़ी विलासिता की मीनारें हमेशा के लिए कायम नहीं रह सकती। यह तूफान के पहले का सन्नाटा है। इसीलिए हुक्मरान बेचैन हैं। तरह-तरह के नये-नये काले कानून बनाकर, पुलिस-फौज को चाक-चौबन्द करके वे निश्चिन्त होना चाहते हैं, पर हो नहीं पाते। उन्हें लगने लगा है कि आम जनता को बांटने-बरगलाने के लिए उछाले जाने वाले मुद्दे और छोड़े जाने वाले शिगूफे भी बहुत दिनों तक काम नहीं आयेंगे। पूंजीवादी जनतंत्र की कलई चारों ओर से उतर रही है। नया रंग-रोगन टिकता नहीं। इसलिए भारत की पूंजीवादी राज्यसत्ता फासिस्ट निरंकुशशाही की ओर खिसकती जा रही है।

इसलिए, 'क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान' के जरिए हम इतिहास को गढ़ने वाले और अपने बलिष्ठ हाथों से समय के प्रवाह को मोड़ देने वाले मेहतनकश अवाम के पराक्रम को ललकार रहे हैं और एक नई, कठिन और निर्णायक लड़ाई की तैयारी में शामिल होने के लिए उन तमाम लोगों को निमंत्रण दे रहे हैं, जिनकी आत्माएं युवा हैं, जो सच्चे अर्थों में जिन्दा हैं।"

दिशा छात्र संगठन, बिगुल मज़दूर दस्ता, देहाती मज़दूर-किसान यूनियन, नारी सभा, दायित्वबोध मंच और नौजवान भारत सभा की ओर से पिछले छह वर्षों से चलाये जा रहे क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान के पर्चा संख्या-4 के अंश

प्रमुख सम्पर्क : ❑ बिगुल, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ ❑ 'आह्वान' कार्यालय, संस्कृति कुटीर, कल्याणपुर, गोरखपुर ❑ विजयकुमार, 55/3, ई.डब्ल्यू.एस., आवास विकास, रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर ❑ कृष्णगोविन्द सिंह, बी-118, बिड़ला छात्रावास, बी.एच.यू.वाराणसी ❑ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार फेज-एक, दिल्ली-91